गांधी जी का जन्तर

तुम्हें एक जन्तर देता हूं। जब भी तुम्हें सन्देह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आजमाओ:

जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शकल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुंचेगा ? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा ? यानि क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है ?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा सन्देह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है।

मो. क. गांधी

स्वतन्त्र भारत में स्कूल शिक्षा

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

नवम्बर 1988
कार्तिक 1910

P.D. 10T-DPS

प्रकाशन सहयोग

सी.एन. राव, अध्यक्ष, प्रकाशन विभाग

प्रभाकर द्विवेदी	**मुख्य सम्पादक**	यू. प्रभाकर राव	**मुख्य उत्पादन अधिकारी**
दिनेश सक्सेना	**सम्पादक**	डी. साई प्रसाद	**उत्पादन अधिकारी**
राजपाल	**सहायक सम्पादक**	रती राम	**उत्पादन सहायक**

आवरण

शान्तो दत्त, चंद्र प्रकाश टंडन

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली 110016 द्वारा प्रकाशित तथा एस.पी. इलेक्ट्रोनिक्स, 4771/23, भरत राम रोड, दरियागंज, नई दिल्ली 110002 द्वारा फ़ोटो कम्पोज़ होकर मेसर्स तुलसी प्रिंटर्स, पाटलिपुत्र इंडस्ट्रियल एस्टेट, पटना (बिहार) द्वारा मुद्रित।

प्राक्कथन

भारत एक विशाल देश है। इसकी सीमाओं के अन्तर्गत अनेक भाषाएं बोली जाती हैं और यहां के लोगों को बहुत सी संस्कृतियां धरोहर में मिली हैं। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद, जीवन के सभी क्षेत्रों और लोगों की कार्य-प्रणाली में अत्यधिक सुधार हुआ है। शिक्षा के क्षेत्र में विकास की गति अधिक तीव्र रही है और उसमें कुछ मूलभूत परिवर्तन किये गए हैं। गत 41 वर्षों में जो शैक्षिक प्रगति हुई है, उसका सर्वांगीण सर्वेक्षण करना कठिन होगा।

पिछले 26 वर्षों में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् ने शैक्षिक सुधारों में सक्रिय भाग लिया है और परिषद् में तत्सम्बन्धी आंकड़े तथा जानकारी भी उपलब्ध है। अतः यह निश्चय किया गया है कि देश में किये गए शैक्षिक सुधारों के मुख्य लक्षणों पर एक प्रबन्ध तैयार किया जाये जिसमें पाठकों को उनका सामान्य परिचय मिल सके। हमारा यह आशय नहीं था कि हम इस प्रबन्ध में उनका विस्तृत ब्यौरा दें। हमने यहाँ शिक्षा और विशेष रूप से स्कूल शिक्षा के क्षेत्र में केवल उन परिवर्तनों का वर्णन किया है जिन से नई दिशाओं का निर्देश मिला है। यहां यह कहना भी समुचित प्रतीत होता है कि यदि हम इस प्रबन्ध की सीमित परिधि के कारण कुछ पक्षों से पूर्ण न्याय नहीं कर सके तो इसका मतलब यह नहीं कि वे अपेक्षतया कम महत्वपूर्ण हैं।

प्रबन्ध के आरम्भ में हमने उन शिक्षा पद्धतियों का वर्णन किया है जो प्राचीन काल से लेकर, समय-समय पर भारत में प्रचलित रही हैं। इसमें शिक्षा की मुख्य प्रक्रियाओं का वर्णन करते समय, स्कूल शिक्षा को विशेष महत्व दिया गया है। इस प्रबन्ध में वर्णित शिक्षा के सभी पक्षों को विकसित करने में परिषद् ने निस्सन्देह सक्रिय भाग लिया है, किन्तु राज्य सरकारों ने भी इस कार्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हमें विश्वास है कि भविष्य में भी वे इसी प्रकार सार्थक योग देती रहेंगी। इस क्षेत्र में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (रा० शै० अनु० प्र० प०) को अब तक जो भी उपलब्धियां मिली हैं, वे राज्यों की

निरन्तर एवं सक्रिय साझेदारी का परिणाम हैं। प्रबन्ध के अन्त में, राष्ट्रीय शिक्षा नीति तथा राष्ट्रीय संसद् द्वारा सम्मत उसकी कार्रवाई-योजना के क्रियान्वयन के फलस्वरूप जो प्रवृत्तियां देखने में आई हैं, उनका वर्णन किया गया है।

मैं अपने सभी सहयोगियों का अनुगृहीत हूँ, जिन्होंने इस प्रबन्ध के लिए आवश्यक जानकारी को संगृहीत तथा संक्षिप्त करने का कठिन प्रयास किया है। राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान के सभी विभागाध्यक्षों, केन्द्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी संस्थान तथा रा० शै० अनु० प्र० परिषद् के दिल्ली स्थित संघटकों ने प्रबन्ध के संकलन के लिए जानकारी, दस्तावेज़ तथा आंकड़े जुटाये हैं। मैं प्रबन्ध के लिये नियुक्त समिति के सदस्यों का भी कृतज्ञ हूँ जिन्होंने इसे विकसित करने के लिए विशेष प्रयास किया है। सामग्री का हिन्दी रूपांतर श्री हरिवंश लूथरा ने किया है, जिसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। मुझे आशा है कि अध्यापकगण, प्रशिक्षक तथा स्कूली शिक्षा से सम्बद्ध अन्य व्यक्ति, इसका व्यापक रूप से अध्ययन एवं स्वागत करेंगे।

पी० एल० मल्होत्रा
निदेशक

नई दिल्ली — राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

स्वतन्त्र भारत में
स्कूल शिक्षा

1963
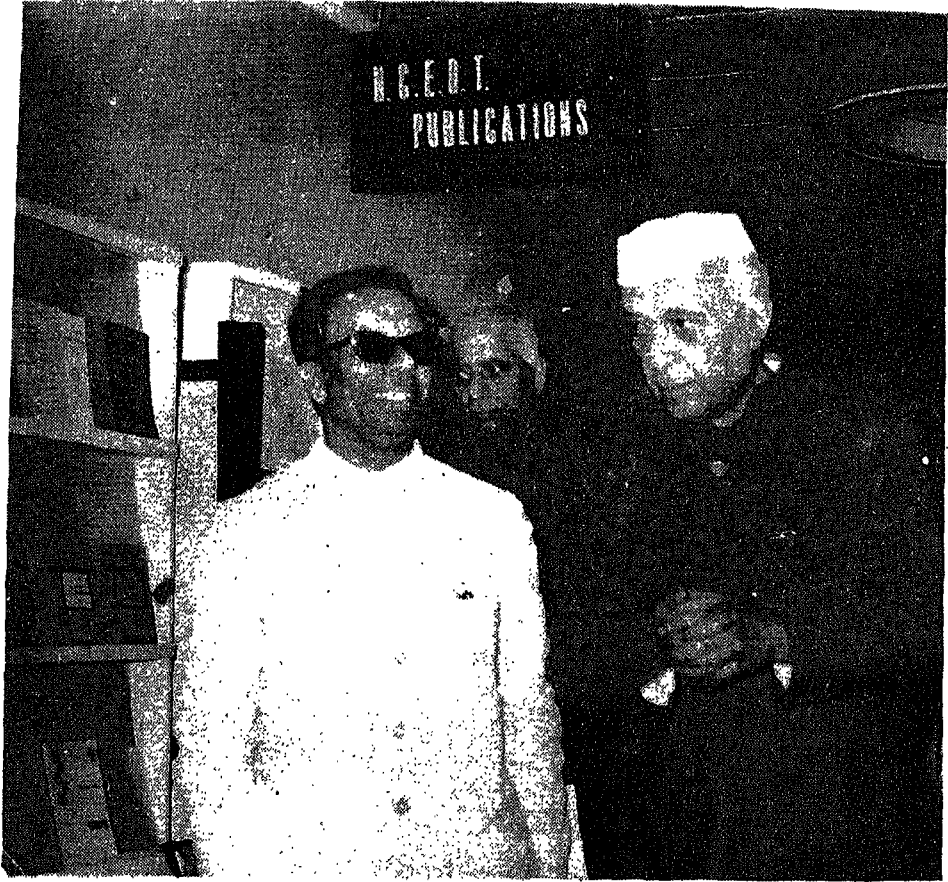
विज्ञान भवन, नई दिल्ली में आयोजित राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के प्रकाशनों की एक प्रदर्शनी में तत्कालीन केन्द्रीय शिक्षा मंत्री श्री हुमायूँ कबीर तथा प्रधान मंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू।

परिचय

शिक्षा, व्यक्ति की आर्थिक एवं सामाजिक प्रगति का प्रभावी साधन है, इस बात को सभी स्वीकार करते हैं। राष्ट्रीय विकास के लिए भी, शिक्षा को सर्वाधिक शक्तिशाली उपकरणों में गिना जाता है, क्योंकि यह नागरिक को राष्ट्रीय विकास के लिए आवश्यक प्रयासों में सक्रिय भाग लेने के योग्य बनाती है। भारत जैसे विकासशील देश में जहां वैज्ञानिक तथा प्रौद्योगिक विकास के फलस्वरूप जीवन शैली में मूलभूत परिवर्तन हो रहा है, शिक्षा को लोगों की गुणवत्ता सुधारने का प्रबल साधन माना जाने लगा है।

भारत के सन्दर्भ में शिक्षा से अपेक्षा की जाती है कि वह मानव संसाधनों के विकास के लिए उत्प्रेरक की भूमिका निभाएगी तथा उपयुक्त ज्ञान, कौशल, मूल्यों तथा मनोवृत्तियों के विकास द्वारा, व्यक्ति तथा समाज की प्रगति को ठोस आधार तथा निरन्तरता प्रदान करेगी। यह आशा भी की जाती है कि वह लोगों को समुत्थान-शक्ति प्रदान कर, उन्हें भावी चुनौतियों का मुकाबला करने के योग्य बनाएगी। शैक्षिक प्रयासों का उद्देश्य ऐसे आत्म-विश्वासी व्यक्तियों का सर्जन होना चाहिए जिनकी लोकतांत्रिक मूल्यों तथा धर्म-निरपेक्षता में दृढ़ आस्था हो और जो अनेक भाषा-भाषियों, भिन्न धर्मों के अनुयायिओं तथा अलग-अलग जीवन शैलियों के समर्थकों में से एक संकलित राष्ट्र का निर्माण करने के लिए उत्सुक हों।

शिक्षा का विकास—ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारत में शिक्षा की एक दीर्घ परम्परा है। प्राचीन काल में एक ओर, तक्षशिला तथा नालन्दा विश्वविद्यालयों जैसी संगठित संस्थाओं में औपचारिक शिक्षा प्रदान की जाती थी, दूसरी ओर, आश्रमों में प्रतिष्ठित

आचार्यों की देख-रेख में शिष्य अनौपचारिक रूप से विद्या ग्रहण करते थे।

अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक भारत ने अपनी शिक्षा प्रणाली को सुव्यवस्थित कर लिया था। देशी शिक्षा प्रणाली में दो प्रकार की संस्थाएं थीं। प्रथम श्रेणी में पाठशालाएं तथा मदरसे थे जिनमें मुख्य रूप से धार्मिक शिक्षा दी जाती थी। दूसरी श्रेणी की संस्थाओं में धर्म-निरपेक्ष शिक्षा की व्यवस्था थी तथा वहां पढ़ने, लिखने तथा गणित की प्रारम्भिक शिक्षा दी जाती थी। उस समय शासन द्वारा संगठित अथवा सहायता-प्राप्त स्कूलों का चलन नहीं था। अधिकांश संख्या उन संस्थाओं की थी जिन्हें स्वैच्छिक रूप से संगठित किया गया था और जो खुशहाल लोगों के विशेष वर्गों की आवश्यकताओं को पूरा करती थीं।

ब्रिटिश शासन में शैक्षिक स्थिति

ब्रिटिश शासन के दौरान, भारतीय शैक्षिक प्रणाली ने क्रमशः विस्तृत एवं संगठित रूप धारण कर लिया था। ब्रिटिश अधिकारियों ने 1835 ई० में शिक्षा-सम्बन्धी, प्रथम नीति-घोषणा मैकाले की टिप्पणी के साथ की थी । तदुपरान्त 1854 में 'कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्ज़' की विज्ञप्ति जारी की गई जो सामान्यतया 'वुड की विज्ञप्ति' के नाम से जानी जाती है। उसमें शिक्षा की बढ़ोतरी के लिए वित्तीय सहायता की नीति भी निर्धारित की गई थी। शिक्षा विभागों की स्थापना तथा गैर-सरकारी संस्थाओं को अनुदान देने की सिफ़ारिश के अतिरिक्त, विज्ञप्ति में तीन महाप्रान्तीय नगरों—कलकत्ता, मद्रास तथा बम्बई में विश्वविद्यालय स्थापित करने का सुझाव भी दिया गया था।

ब्रिटिश सरकार की कोशिश थी कि अंग्रेज़ी के माध्यम द्वारा पाश्चात्य शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार किया जाये, जबकि प्राच्यविद शिक्षा को भारतीय संस्कृति के अनुरूप बनाने के लिए प्रयत्नशील थे। भारत में अंग्रेज़ी शिक्षा की व्यवस्था करने तथा उसके प्रचार के लिए सहायता देने का मूल उद्देश्य यह था कि "यहां के लोग रंग-रूप में हिन्दुस्तानी होते हुए भी, अंग्रेजों के आचार, विचार, चिन्तन तथा रुचियों को अपना लें।" शिक्षा के ये लक्ष्य, ब्रिटिश सरकार के

उपनिवेशक तथा साम्राज्यिक उद्देश्यों से प्रेरित थे। ब्रिटिश शासक चाहते थे कि भारत में वे एक ऐसी श्रेणी या श्रेणियों का निर्माण करें जो उनके प्रति वफादार बनी रहें तथा उनके बढ़ते हुए साम्राज्य के प्रशासन में उनकी सहायता करें।

शिक्षा के क्षेत्र में ब्रिटिश शासकों की एक उल्लेखनीय देन यह थी कि सरकारी अथवा सरकार से सहायता-प्राप्त संस्थाओं में शैक्षिक सुविधाएं, सभी नागरिकों को समान रूप से उपलब्ध थीं। किन्तु जिस शिक्षा पद्धति को उन्होंने आरम्भ किया, वह मुख्य रूप से उच्च वर्ग के लोगों के लिये थी और बहु-संख्यक गरीब लोगों की शिक्षा की उपेक्षा की गई थी। यह व्यवस्था अधोमुखी निस्स्यन्दन सिद्धान्त (Downward Filteration Theory) पर आधारित थी जिसके अनुसार यह अपेक्षा की जाती है कि संस्कृति उच्च वर्ग के लोगों के माध्यम से निम्न श्रेणी के लोगों तक पहुंच जायेगी। व्यापक अनक्षरता के उन्मूलन तथा प्रारम्भिक शिक्षा के सर्व सुलभीकरण के लिये कोई यत्न नहीं किया गया और न ही प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रमों को विकसित करने की कोई चेष्टा की गई।

राष्ट्रीय विचारधारा इस पक्ष में थी कि शिक्षा प्रणाली से सभी लोगों को एक समान शैक्षिक अवसर मिलने चाहिए तथा शिक्षा का उपयोग, सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन के लिए साधन के रूप में किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओं ने केन्द्रीय सरकार को इस बात पर राज़ी करने की चेष्टा भी की कि वह सभी बच्चों के लिये न्यूनतम सामान्य शिक्षा की व्यवस्था करे जो निशुल्क एवं अनिवार्य हो। इस दिशा में पहला कारगर कदम 1881 में उठाया गया। जब दादा भाई नारोजी ने हंटर आयोग के नाम से विख्यात प्रथम शिक्षा आयोग के सम्मुख अपनी गवाही में यह मांग प्रस्तुत की कि सभी बच्चों के लिए चार वर्षों की अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की जाये। स्वर्गीय श्री गोपाल कृष्ण गोखले ने इसी मांग को दोहराया, जब 1910 में उन्होंने केन्द्रीय विधान सभा (1910-12) में इसी विषय पर प्रस्ताव रखा तथा 1912 में एक विधेयक इस उद्देश्य से प्रस्तुत किया कि केन्द्रीय सरकार प्रारम्भिक शिक्षा के सर्वसुलभीकरण के उत्तरदायित्व को स्वीकार करे। यद्यपि गोखले का यह प्रयास असफल रहा, किन्तु भारतीय नेता, जनता में, अनिवाय प्रारम्भिक शिक्षा की मांग के पक्ष में चेतना जागृत करने में सफल हो गए। परिणामस्वरूप, 1918 से 1931 के बीच कई
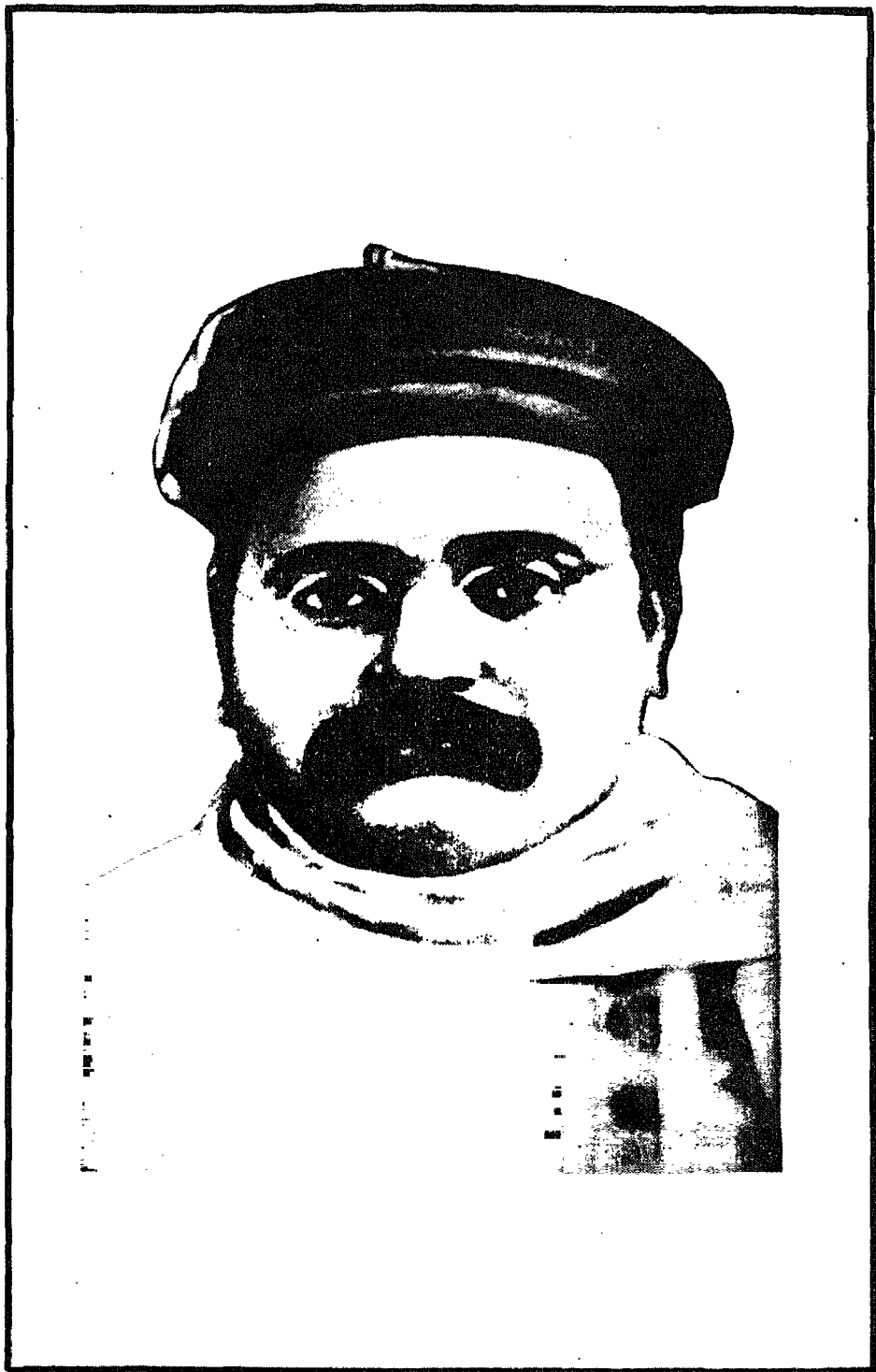
नव-निर्वाचित प्रान्तीय विधान सभाओं ने अनिवार्य शिक्षा सम्बन्धी कानून पारित कर दिये। प्रारम्भिक शिक्षा को बढ़ावा देने तथा शिक्षा के अवसरों के समीकरण के उद्देश्य से, 1944 में युद्धोत्तर शैक्षिक विकास योजना प्रकाशित हुई जो सार्जेंट योजना के नाम से प्रसिद्ध है। इस योजना में 6 से 14 वर्ष तक के सभी बच्चों के लिये प्रारम्भिक शिक्षा को निशुल्क तथा अनिवार्य बनाने का सुझाव दिया गया और इसे चरणों में लागू किया जाने की सिफारिश की गई। यह प्रयास प्रशंसनीय था किन्तु इसे क्रियान्वित न किया जा सका क्योंकि भारतीय समाज उस समय स्वतन्त्रता के लिये संघर्ष के कारण अपूर्व हलचल के दौर में से गुज़र रहा था। एक लम्बे संघर्ष के बाद, 1947 में देश को आज़ादी मिल गई।

ब्रिटिश शासन ने अपनी आवश्यकताओं के संदर्भ में, शिक्षा प्रणाली को सुधारने तथा उसे अधिक कुशल बनाने के लिए, कई आयोगों तथा समितियों द्वारा, समय-समय पर उसका मूल्यांकन करवाया किन्तु शिक्षा के मूल उद्देश्यों में कोई अन्तर नहीं आया। तत्कालीन शिक्षा पद्धति में उदार शिक्षा पर निरन्तर बल दिया जाता रहा जिसका देश की विकासात्मक आवश्यकताओं के साथ कोई सम्बन्ध नहीं था। चूँकि वह शिक्षा प्रणाली राष्ट्र की आकांक्षाओं के अनुरूप नहीं थी, उसके प्रति लोगों के असन्तोष की भावना बढ़ती गई। इसके फलस्वरूप देश में शिक्षा के कई वैकल्पिक माडल सुझाये गये और उनके प्रयोग की मांग की गई। 1927 में महात्मा गांधी ने बुनियादी शिक्षा की योजना को प्रस्तुत किया जिसके अन्तर्गत सब बच्चों के लिये 7 वर्षों की शिक्षा को सुलभ कराने का प्रस्ताव था। इसमें शिक्षा के माध्यम के लिये मातृ-भाषा की परिकल्पना की गई थी तथा किसी उत्पादक शिल्प-क्रिया को शिक्षा का केन्द्र बनाने की बात कही गई थी। बुनियादी शिक्षा का प्रस्ताव, देश में राष्ट्रीय शिक्षा को विकसित करने का प्रथम प्रयास था जिसमें शिक्षा को लोगों की आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं के अनुरूप बनाने की चेष्टा की गई थी। उसके बाद देश में बहुत सी शिक्षा संस्थाएं, बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्तों के आधार पर स्थापित की गईं।

1947 में शिक्षा की स्थिति

ब्रिटिश शासन के दौरान, शिक्षा के क्षेत्र में कई उपलब्धियों के

बावजूद, स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय (1947) में देश में शिक्षा की स्थिति प्रायः हर लिहाज़ से कमज़ोर थी। हज़ारों ग्रामों तथा ग्रामीण आवासों में, स्कूलों का निरन्तर अभाव था। 6-11 आयुवर्ग के तीन, तथा 11-14 आयुवर्ग के 11 बच्चों में से केवल एक एक बच्चा स्कूलों में भर्ती था। 14-17 वर्ष के युवकों में से मुश्किल से एक माध्यमिक स्कूल में दाखिल था। स्कूलों तथा विश्वविद्यालयों–दोनों में व्यावसायिक शिक्षा का विकास सर्वथा असन्तोषजनक था। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में प्रशिक्षित अध्यापकों की बहुत कमी थी। देश के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में, नगरीय लोगों और ग्रामीणों, लड़के और लड़कियों तथा सामान्य जनता और अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के बीच शैक्षिक असन्तुलन बहुत ज़्यादा था। शिक्षा और विशेष रूप से स्कूल शिक्षा की गुणात्मकता तथा स्तर काफ़ी असन्तोषजनक थे। अंग्रेजी पर ज़ोर अधिक था तथा विज्ञान, गणित एवं भारतीय भाषाओं की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था। देश में केवल 14 प्रतिशत लोग साक्षर थे और शिक्षा पर कुल व्यय, राष्ट्रीय आय के आधे प्रतिशत से भी कम था।

स्वतन्त्रता के बाद शिक्षा का पुनर्निर्माण

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद महसूस किया गया कि स्वाधीनता को सार्थक बनाने के लिये, देश में सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन तथा लोकतन्त्र, सामाजिक न्याय एवं धर्म-निरपेक्षता पर आधारित नई सामाजिक पद्धति की स्थापना आवश्यक है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये, भारत ने राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के विराट कार्य को सम्पन्न करने का बीड़ा उठाया। इस बात को निर्विवाद रूप से मान लिया गया कि शिक्षा प्रणाली को पुनर्गठित तथा अनुप्राणित किये बिना, स्वतन्त्र भारत को निरन्तर प्रगति तथा समृद्धि के पथ पर आगे ले जाना असम्भव प्रायः है। अतः स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद शिक्षा के व्यवस्थित विकास का कार्य शुरू किया गया। 1950 में भारतीय संविधान के लागू होने, तथा, 1951 में देश व्यापी आर्थिक एवं सामाजिक आयोजन के प्रारम्भ होने पर, जवाहर लाल नेहरू ने महसूस किया कि शिक्षा प्रणाली के ढांचे, लक्ष्यों, पाठयक्रमों, प्रक्रियाओं तथा संरचना में आमूल परिवर्तन की आवश्यकता

है। वे मानव-प्रयास के प्रत्येक क्षेत्र में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया द्वारा, भारतीय समाज को रूपान्तरित करना चाहते थे। उन्होंने एक ऐसे नये समाज की परिकल्पना की थी जो वास्तव में आधुनिक, स्वतन्त्र, समतावादी तथा लोकतांत्रिक हो तथा समाजवाद, धर्म निरपेक्षता एवं वैज्ञानिक चिन्तन में जिसकी पूर्ण आस्था हो। उनका मत था कि ऐसे समाज के निर्माण के लिये, शिक्षा को निर्णायक भूमिका निभानी होगी। उन्होंने कहा था कि यदि ध्यान से सोचा जाये तो कोई भी विषय शिक्षा से अधिक महत्वपूर्ण नहीं है। किसी भी राष्ट्र के निर्माण एवं उत्थान का उत्तरदायित्व, देश के नर-नारियों पर रहता है और शिक्षा से ही इन नर-नारियों के निर्माण की अपेक्षा की जाती है।

यह कहना आवश्यक प्रतीत होता है कि आधुनिक औद्योगिक समाज के निर्माण में संलग्न जवाहरलाल नेहरू ने अतीत से पूर्ण विच्छेद की कभी परिकल्पना नहीं की। वे भारतीय संस्कृति के दार्शनिक एवं आध्यात्मिक आधार-स्तम्भों से अत्यधिक प्रभावित हुए थे। उन्हें भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति की प्रचुरता पर गर्व था। जब भारत में वैज्ञानिक तथा औद्योगिक परिवर्तन लाने के लिए योजना बनाई जा रही थी तो वे नीति के निर्धारकों और देशवासियों को निरन्तर याद दिलाते रहे कि वे भारत की सांस्कृतिक धरोहर की अनदेखी न करें। यही कारण है कि उनकी शिक्षा-नीति में देश की सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक धरोहर के परिरक्षण का महत्वपूर्ण स्थान है।

नीति निर्देश

भारत में शिक्षा-प्रणाली के पुनर्गठन का कार्य, 1948 में सर्वपल्ली राधाकृष्णन की अध्यक्षता में "विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग" की नियुक्ति के साथ आरम्भ हुआ। इस आयोग का उद्देश्य विश्वविद्यालयों को शिक्षा की स्थिति का पुनरावलोकन कर, ऐसे सुधार सुझाना था जिस से भारत के सामाजिक एवं आर्थिक विकास के लिए आवश्यक, वैज्ञानिक, तकनीकी तथा अन्य मानव संसाधन उपलब्ध हो सकें। अप्रैल, 1950 में केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड ने विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग की रिपोर्ट पर विचार किया तथा उसके अधिकांश सुझावों को स्वीकार कर लिया। ये विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों की शिक्षा, अनुसंधान तथा परीक्षाओं को सुधारने के सम्बन्ध में थे। इन में उच्च

शैक्षिक संस्थाओं के पाठ्यक्रमों को आधुनिक बनाने पर भी बल दिया गया था ताकि उन्हें अग्रणी देशों के पाठ्य विवरणों के समकक्ष बनाया जा सके। आयोग के जाँच परिणामों के आधार पर उच्च शिक्षा के विस्तार का काम आरम्भ किया गया। नए विश्वविद्यालय स्थापित किये गए तथा देश के भिन्न भागों में भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों तथा कई राष्ट्रीय विज्ञान प्रयोगशालाओं की स्थापना की गई। उच्च अनुसंधान के केन्द्रों में आयुर्विज्ञान, कृषि तथा व्यवहारिक विज्ञान में अनुसंधान का कार्य होने लगा, जिसके परिणामस्वरूप, लगभग एक दो दशक में, निपुण वैज्ञानिकों, इन्जीनियरों तथा डाक्टरों की संख्या में संतोषजनक वृद्धि हुई तथा देश को काफ़ी मात्रा में तकनीकी ज्ञान से सम्पन्न मानव संसाधन उपलब्ध हो गए जिससे भावी विकास एवं नवीन प्रक्रियाओं को एक सुदृढ़ आधार मिल गया। इससे समाज और विशेष रूप से अर्थव्यवस्था एवं उद्योगों के रूपांतरण में बड़ी सहायता मिली। शिक्षा आयोग ने विश्वविद्यालयों की स्वायत्तता तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग एवं ग्रामीण विश्वविद्यालयों की स्थापना के सम्बन्ध में भी सिफ़ारिशें की थीं। इनके फलस्वरूप 1956 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग स्थापित किया गया।

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने, उच्च शिक्षा की त्रुटियों का वर्णन करते समय, माध्यमिक शिक्षा प्रणाली की कमियों की ओर भी संकेत किया था। 1952 में भारत सरकार ने डा० लक्ष्मणस्वामी मुदलिअर की अध्यक्षता में माध्यमिक शिक्षा आयोग की नियुक्ति की। आयोग को, भारत में माध्यमिक शिक्षा की प्रवर्तमान स्थिति का अध्ययन करने तथा उसके पुनर्गठन एवं सुधार के लिए उपाय सुझाने का सुनिश्चित कार्य सौंपा गया। आयोग ने 1953 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें उसने स्कूल शिक्षा के लिए 11 वर्ष तथा प्रथम उपाधि के लिए 3 वर्ष की अवधि का प्रस्ताव किया। आयोग ने जो अन्य सिफ़ारिशें कीं उनमें, 'अवर माध्यमिक स्तर के बाद पाठ्यक्रम का नानारूपकरण', 'बहुमुखी स्कूलों की स्थापना,' 'स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा के लिए व्यापक कार्यक्रमों का संचालन,' 'पाठ्यपुस्तक-पुस्तकालयों की सुविधाओं में सुधार' तथा 'विशिष्ट पुस्तकालयों की स्थापना' सम्मिलित थीं। आयोग ने अध्यापकों के प्रशिक्षण में गुणात्मक सुधार, अध्यापकों के व्यावसायिक विकास के लिए सेवाकालीन प्रशिक्षण तथा उसकी प्रतिष्ठा एवं सेवा की शर्तों में सुधार पर भी बल दिया। माध्यमिक शिक्षा आयोग की सिफ़ारिशों की क्रियान्विति के फलस्वरूप स्कूल सुविधाओं में व्यापक

वृद्धि हुई किन्तु शिक्षा के गुणात्मक सुधार के विषय में कुल मिलाकर सन्तोषजनक उन्नति न हो सकी। ऐसी स्थिति में भारत सरकार ने 1964 में, प्रो० दौलत सिंह कोठारी की अध्यक्षता में शिक्षा आयोग की नियुक्ति की। आयोग से अपेक्षा की गई कि वह शिक्षा के सभी स्तरों और पहलुओं का पुनरीक्षण कर, सरकार को राष्ट्रीय शिक्षा नीति के सम्बन्ध में सलाह दे। आयोग ने विचाराधीन विषयों पर गहराई से विचार-विमर्श किया और शिक्षा प्रणाली के पुनर्गठन के लिए व्यापक सिफारिशें कीं। उसने इस तथ्य को दोहराया कि राष्ट्र के सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक रूपान्तरण के लिए शिक्षा एक शक्तिशाली साधन है और राष्ट्र के विकास के लिये, उसे इस महत्वपूर्ण भूमिका को निभाना होगा। उसने शिक्षा के रूप को बदलने तथा उसे लोगों के जीवन, आवश्यकताओं तथा आकांक्षाओं के अनुरूप बनाने की सिफारिश की। इस सम्बन्ध में आयोग ने सुझाव दिया कि देश की विकास सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये उच्च माध्यमिक स्तर पर शिक्षा का व्यावसायीकरण होना चाहिए। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए, विज्ञान-शिक्षा के स्तर में सुधार तथा कार्य-अनुभव की व्यवस्था द्वारा, शिक्षा को उत्पादिता से संबंधित कर देना चाहिए।

शिक्षा आयोग की सिफारिशों और उस पर व्यापक विचार-विमर्श के बाद, भारत सरकार ने 1968 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति पर एक प्रस्ताव प्रकाशित किया। इस प्रस्ताव में आने वाले वर्षों में, शैक्षिक विकास के मार्गदर्शन के लिए 17 सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया था। इसमें इस बात की ओर ध्यान दिलाया गया कि शिक्षा के आमूल पुनर्गठन के लिए पाठ्य विषयों का रूपान्तरण करना होगा ताकि उन्हें जीवन के लिए अधिक उपयोगी बनाया जा सके। शिक्षा प्रणाली को नये सिरे से संगठित करने के लिए यह भी आवश्यक होगा कि शिक्षा को सर्वसुलभ बनाने तथा उसके सभी स्तरों पर गुणवत्ता को सुधारने के लिये, निरन्तर एवं तीव्र प्रयास किये जाएँ, विज्ञान एवं टैक्नालोजी के विकास पर बल दिया जाये, तथा नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों को छात्रों के मन में बिठाया जाये, प्रस्ताव में यह भी कहा गया था कि "शिक्षा प्रणाली ऐसे चरित्रवान् तथा सकुशल युवक-युवतियों को तैयार करे जो राष्ट्रीय सेवा तथा विकास के लिये वचनबद्ध हों।"

यद्यपि देश में शिक्षा के सभी स्तरों पर अभूतपूर्व परिमाणात्मक विकास हुआ, तथापि गुणात्मक सुधारों के लिये जो प्रयास किये गए, उन्हें अपेक्षित सफलता प्राप्त नहीं हुई। इसका कारण यह था कि 1968 में निर्धारित नीतियों तथा आयोजित कार्यक्रमों को कार्य रूप देने के लिये आवश्यक वित्तीय और संघटनात्मक सहायता उपलब्ध नहीं हुई। अत: सुलभीकरण, गुणवत्ता तथा उपयोगिता की समस्याओं के समाधान की दिशा में अभी बहुत कुछ करना बाकी था। यह स्वीकार किया गया कि रेखीय सुधार तथा सुधार की प्रवर्तमान गति और स्वरूप, समाज की बदलती आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये काफी नहीं हैं। इसके साथ ही, नई चुनौतियों की विविधता तथा सामाजिक आवश्यकताओं के संदर्भ में यह आवश्यक हो गया कि शैक्षिक विकास के लिये एक नये डिज़ाइन तथा तत्कालीन वास्तविकताओं एवं भावी समस्याओं को ध्यान में रखते हुए नए नीति-निर्देशों को विकसित किया जाये। इसी संदर्भ में भारत सरकार ने मई, 1986 में एक नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा की।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में एक ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति की परिकल्पना की गई है जो भारत के संविधान में वर्णित मूल सिद्धान्तों पर आधारित है। राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति की धारणा से यह स्पष्ट संकेत मिलता है, कि "एक निर्धारित स्तर तक, सभी छात्रों को, चाहे वे किसी भी जाति, धर्म, स्थान अथवा लिंग के हों, तुल्य गुणवत्ता की शिक्षा सुलभ होगी।" इस नीति में शिक्षा को मानव के सर्वतोमुखी—भौतिक तथा आध्यात्मिक विकास का आधार माना गया है। यह नीति शिक्षा की उत्संस्करण की भूमिका को उजागर करती है। इसमें शिक्षा के उस पहलू का भी जिकर किया गया है जो वह संवेदनशीलता तथा प्रत्यक्ष ज्ञान को परिष्कृत करने में अदा करती है। यही गुण राष्ट्रीय सामंजस्य, वैज्ञानिक मन: स्थिति तथा मन एवं आत्मा की स्वतन्त्रता को बढ़ावा देते हैं और इस प्रकार भारतीय संविधान में निहित समाजवाद, लोकतन्त्र तथा धर्म-निरपेक्षता के लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायता करते हैं। यह नीति, अर्थ-व्यवस्था के भिन्न स्तरों के लिए आवश्यक मानव साधनों के विकास में शिक्षा की भूमिका के महत्व को समझती है तथा उसे अनुसंधान एवं विकास की प्रगति का आधार तथा राष्ट्रीय स्वलम्बन का साधन मानती है, इस प्रकार राष्ट्रीय शिक्षा नीति की धारणा है कि शिक्षा पर किया गया व्यय, वर्तमान को सुधारने तथा भविष्य को

उज्जवल बनाने के लिये अत्यन्त लाभप्रद पूंजी-निवेश है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने उन उपक्रमणों तथा प्राथमिकताओं को निर्देशित किया है जो एक ऐसी शिक्षा प्रणाली की संरचना के लिये आवश्यक हैं, जो लोगों को भावी चुनौतियों का मुकाबला करने के लिये तैयार कर सके। तत्पश्चात् अगस्त, 1981 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति के क्रियान्वयन के लिए, "कार्रवाई की योजना" को स्वीकार किया गया। इस योजना में नीति-निर्देशों को क्रियान्वित करने के लिए आवश्यक कार्यवाही की ओर संकेत किया गया है। इसमें मोटे तौर से उस नीति का वर्णन भी किया गया है जिसके अन्तर्गत शैक्षिक कार्यक्रमों के प्रतिपादन
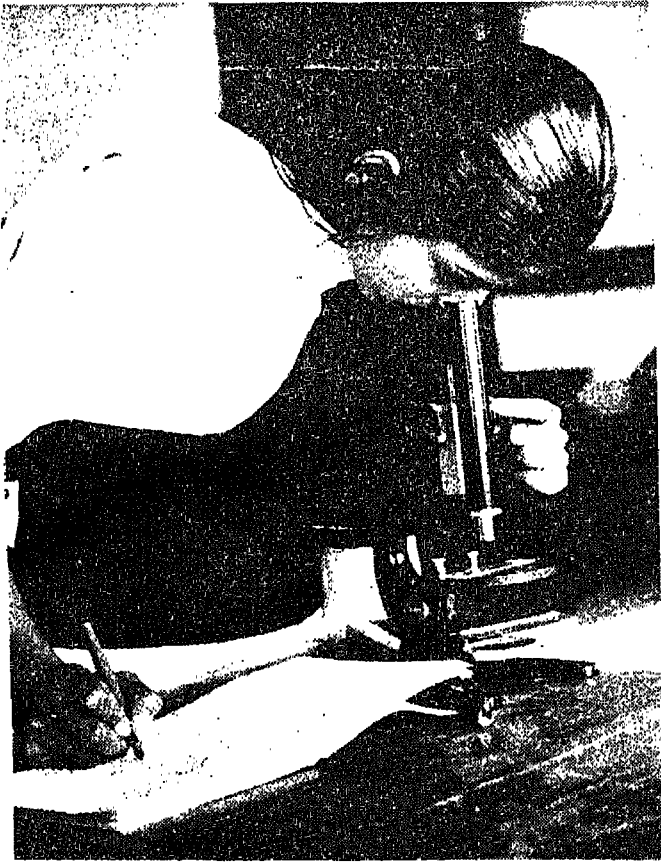
तथा क्रियान्वयन से सम्बद्ध भिन्न-भिन्न विभाग तथा एजेंसियां, ब्यौरेवार योजनाओं को तैयार कर सकती हैं। इस प्रकार राष्ट्रीय शिक्षा नीति तथा 'कार्रवाई की योजना' ने आगामी वर्षों में अपेक्षित शैक्षिक सुधारों के लिये आधार तैयार कर दिया है।

विकास में प्रगति

1951 में भारत में आर्थिक तथा सामाजिक आयोजन का सूत्रपात हुआ। तभी से देश को शैक्षिक पुनर्निर्माण सम्बन्धी दो प्रमुख समस्याओं

का सामना करना पड़ा है, पहली, शैक्षिक अवसरों को समान रूप से उपलब्ध कराने के लिए, शैक्षिक सुविधाओं में सुधार तथा दूसरी, स्कूल स्तर पर शिक्षा की विषय-वस्तु तथा गुणवत्ता में सुधार। शैक्षिक विकास के भिन्न पहलुओं में जो प्रगति हुई है, उसे नगण्य नहीं कहा जा सकता यद्यपि इन समस्याओं के सन्तोषजनक समाधान के लिये अभी बहुत कुछ करना बाकी है।

प्रारम्भिक शिक्षा का सर्वसुलभीकरण

प्रारम्भिक शिक्षा का सर्वसुलभीकरण, स्वतन्त्रता-प्राप्ति में, शैक्षिक विकास के सर्वाधिक महत्वपूर्ण लक्ष्यों में माना गया है। भारत में शैक्षिक विकास की युद्धोत्तर योजना (1944) के अन्तर्गत, निःशुल्क तथा अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा को 40 वर्षों की अवधि में सर्वसुलभीकरण का कार्यक्रम बनाया गया था। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद राष्ट्रीय सरकार ने

महसूस किया कि यह अवधि बहुत लम्बी है। उसने सुझाव दिया कि निःशुल्क तथा अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा के सुलभीकरण की गति को तेज़ किया जाये और इस कार्य को 1960 तक पूरा कर लिया जाये। इस सिफ़ारिश को भारतीय संविधान की धारा 45 में, राज्य नीति के निदेशक सिद्धान्त के रूप में समावेश कर लिया गया और सरकार को निर्देश दिया गया कि संविधान के लागू होने के दस वर्ष के भीतर, 14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों को निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा सुलभ कराने का प्रयास किया जाये। किन्तु इस संकल्प की पूर्ति के मार्ग में कई गम्भीर बाधाएं आ खड़ी हुईं जिसमें देश के विभाजन के बाद शरणार्थियों का आगमन तथा वित्तीय एवं मानवीय—दोनों प्रकार के साधनों की विषम स्थिति, प्रमुख थीं। परिणामस्वरूप, लक्ष्य-पूर्ति की तिथि को पहले 1970, फिर 1976 और तदुपरान्त 1990 तक आगे बढ़ाना पड़ा। रा.शि.नी. (1986) के अनुसार अब लक्ष्य-तिथि, 1995 निर्धारित की गई है। निरन्तर बढ़ती हुई जनसंख्या, तथा वित्तीय एवं मानव साधनों की कमी, परिकल्पित लक्ष्यों की पूर्ति में मुख्य रूप से बाधक रहे हैं। इन कठिनाइयों के बावजूद, स्वतन्त्रता के बाद के समय में, विकास की गति काफी तेज़ रही है।

1950 के बाद से स्कूली शिक्षा की सुविधाओं में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई। प्राथमिक स्कूलों की संख्या, 1950-51 में 2,09,671 से बढ़कर 1986-87 में 5,37,399 हो गई थी। इसी अवधि में माध्यमिक स्कूलों की संख्या 13,596 से बढ़कर 1,37,196 हो गई। शैक्षिक सुविधाओं के विस्तार के साथ, बच्चों के कुल नामांकन में भी भारी बढ़ोतरी हुई, एक से पांचवीं कक्षा तक कुल नामांकन 1950-51 में 191.55 लाख से बढ़कर 1986-87 में 899.93 लाख हो गया। छटी से आठवीं कक्षाओं में नामांकन 1950-51 में 31.20 लाख से बढ़कर, 1986-87 में 287.80 लाख हो गया। पहली से आठवीं कक्षा में बच्चों की कुल संख्या 1950-51 में 222.75 लाख से बढ़कर 1986-87 में 1187.73 लाख हो गई। प्राथमिक स्तर पर नामांकन का अनुपात भी 1950-51 में 42.6 से बढ़कर 1986-87 में 95.96 हो गया। इस अवधि में माध्यमिक स्तर (छटी से आठवीं कक्षा) पर कुल नामांकन अनुपात 12.9 से 53.14 हो गया।

1950 से लेकर, प्राथमिक स्तर पर नामांकन में वृद्धि संतोषजनक रही है, किन्तु बीच में स्कूल छोड़ने की समस्या, विकास की प्रगति को लगभग नकारती रही है। पहली कक्षा में प्रविष्ट 100 बच्चों में से केवल

लगभग 40, पांचवीं कक्षा और केवल लगभग 25, आठवीं कक्षा तक पहुंचते हैं। व्यर्थता की समस्या के अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि प्राथमिक स्कूलों में बच्चों को रोके रखने की क्षमता बहुत कम हैं। पहली या दूसरी कक्षा में जो बच्चे स्कूल को छोड़ देते हैं, उनमें से अधिकांश पुन: अनक्षरता का शिकार हो जाते हैं और इस प्रकार अनक्षरों की बढ़ती हुई संख्या में और भी वृद्धि करते हैं। परिवारों में और विशेष रूप से, समाज के कमज़ोर वर्गों के परिवारों में सामाजिक एवं आर्थिक विवशताएं, शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर व्यर्थता के ऊंचे दर का कारण रही हैं। नामांकन को बढ़ाने तथा छात्रों को स्कूलों में रोके रखने के लिये, केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों ने उन सामाजिक तथा आर्थिक विषमताओं को दूर करने के लिये कई कदम उठाये हैं, जो कमज़ोर वर्ग के बच्चों के शिक्षा जारी रखने में बाधक होती हैं। प्राथमिक तथा उच्चतर प्राथमिक स्कूलों में प्रेरकों की व्यवस्था, व्यर्थता को रोकने तथा प्राथमिक स्तर पर नामांकन को बढ़ाने के लिये एक महत्वपूर्ण उपाय है। आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से पिछड़े हुए वर्गों के छात्रों के लाभ के लिये, जिन प्रेरकों की व्यवस्था की गई है, उनमें दोपहर का भोजन, मुफ़्त वर्दी अथवा वस्त्र, मुफ़्त पाठ्य पुस्तकें एवं लेखन-सामग्री, तथा कन्याओं के लिये उपस्थिति छात्रवृत्तियां सम्मिलित हैं। प्राथमिक स्कूलों में बच्चों की एक बड़ी संख्या को इन योजनाओं से लाभ मिल रहा है।

प्रारम्भिक शिक्षा के सुलभीकरण के प्रयासों के सिलसिले में, औपचारिक शिक्षा के विकल्प के रूप में, गैर-औपचारिक शिक्षा के कार्यक्रमों को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। इन कार्यक्रमों के अन्तर्गत, उन बच्चों के लिये समत्व कोटि की शिक्षा की व्यवस्था की गई है जो कई सामाजिक एवं आर्थिक बाधाओं के कारण, औपचारिक स्कूलों में प्रवेश पाने में असमर्थ हैं। गैर-औपचारिक शिक्षा कार्यक्रम, केन्द्र से सहायता प्राप्त योजना के रूप में, छटी पंचवर्षीय योजना की अवधि में प्रारम्भ किया गया था। इस योजना को 9 राज्यों आंध्रप्रदेश, असम, बिहार, जम्मू-काश्मीर, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल में सक्रिय रूप से क्रियान्वित किया गया है। इन राज्यों में, देश के कुल गैर-दाखिल बच्चों में से 70 प्रतिशत बच्चे रहते हैं। इस योजना का हाल ही में पुनर्गठन एवं विस्तार किया गया है, तथा इसके अन्तर्गत, उपरिलिखित राज्यों और अरुणाचल को गैर-औपचारिक

शिक्षा केन्द्रों के संचालन के लिये वित्तीय सहायता दी जा रही है। इनके अतिरिक्त, नगरों में गन्दी बस्तियों, पर्वतीय क्षेत्रों, रेगिस्तानी तथा आदिवासी इलाकों में गैर औपचारिक शिक्षा केन्द्रों की स्थापना तथा संचालन के लिए भी सहायता दी जाने लगी है। इसी योजना के अन्तर्गत, कर्मी बच्चों के लिये स्थापित तथा संचालित शिक्षा-प्रायोजनाएं भी, वित्तीय सहायता की अधिकारी हैं। आशा है कि राज्य सरकारें 1987-88 में 1.94 लाख गैर औपचारिक शिक्षा केन्द्रों के लक्ष्य के स्थान पर, 1.84 लाख केन्द्र स्थापित कर पाएंगी जिन पर 35.5244 करोड़ रुपये खर्च होने का अनुमान है। इस कार्य में अधिक से अधिक स्वैच्छिक संगठनों तथा पंचायती राज्य संस्थाओं को सम्मिलित करने के लिए सुनिश्चित कार्रवाई की जा रही है, संगठनात्मक लचीलापन, पाठ्यपुस्तकों की प्रासंगिकता, शिक्षार्थियों की आवश्यकताओं के अनुरूप पाठ्यक्रमों में विविधता तथा प्रबन्ध का विकेन्द्रीकरण, गैर औपचारिक शिक्षा कार्यक्रम की विशेषताएं हैं।

माध्यमिक शिक्षा का विस्तार

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद से माध्यमिक शिक्षा के विस्तार में भी महत्वपूर्ण प्रगति हुई है। 1949-50 में माध्यमिक स्कूलों (नवीं से

ग्यारहवीं कक्षा) की कुल संख्या केवल 6,682 थी। 1960-61 में उच्च/उच्चतर माध्यमिक स्कूलों की संख्या 17,275 थी जो बढ़कर 1986-87 में 64,240 हो गई। 1950-51 में नवीं से ग्यारहवीं कक्षाओं में कुल नामांकन 12.5 लाख था, 1986-87 में उच्च/उच्चतर माध्यमिक स्कूलों (नवीं से बारहवीं कक्षा) में कुल नामांकन 155 लाख था।

माध्यमिक शिक्षा में प्रभावी विस्तार के कई कारण थे। सरकार ने, ग्राम्य क्षेत्रों में प्राथमिक शिक्षा की सुविधाओं को बढ़ाने के लिये कारगर कार्रवाई की थी। आम लोग, जीवन की गुणात्मकता को सुधारने के लिये शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका समझने लगे थे, तथा कन्याओं और आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से पिछड़ी जातियों से सम्बद्ध छात्रों के लिए उदार रियायतों की व्यवस्था की गई थी। कई राज्यों ने माध्यमिक शिक्षा को निःशुल्क बना दिया था और कुछ राज्यों में तो महिलाओं के लिये उच्च माध्यमिक शिक्षा भी निःशुल्क बना दी गई थी।

उच्च माध्यमिक शिक्षा का व्यावसायीकरण

1968 में शिक्षा के सम्बन्ध में राष्ट्रीय नीति के लागू होने के बाद, शिक्षा के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण घटना घटी। समूचे देश में समान

शैक्षिक संरचना तथा शिक्षा के 10+2+3 ढांचे के सम्बन्ध में सहमति प्राप्त हो गई। शिक्षा आयोग (1964-66) ने +2 के स्तर पर शिक्षा के व्यावसायीकरण की सिफ़ारिश भी की थी तथा सुझाव दिया था कि उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं में 50 प्रतिशत छात्रों के लिये व्यावसायिक पाठ्यक्रमों की व्यवस्था की जाये।

मुख्य उद्देश्य यह था कि शैक्षिक विषयों में विविधता लाकर, छात्रों को अपनी मनोवृत्तियों, अभिरुचियों तथा योग्यताओं के अनुसार अध्ययन कार्यक्रमों के चयन का अवसर दिया जाये ताकि युवाओं में रोज़गार- क्षमता बढ़े और आवश्यकता होने पर वे अपना रोजगार शुरू कर सकें, तथा आवश्यक व्यावसायिक क्षमताओं के विकास द्वारा, वर्तमान तथा उभरते हुए कार्य-क्षेत्रों के लिए कुशल मानव साधनों को उपलब्ध कराया जा सके। शिक्षा आयोग की सिफ़ारिशों को क्रियान्वित करने के लिये, उच्चतर माध्यमिक स्तर पर शिक्षा के व्यावसायीकरण को छटी पंचवर्षीय योजना में एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम के रूप में सम्मिलित कर लिया गया। कुछ राज्यों तथा संघीय क्षेत्रों ने इस कार्यक्रम को स्कूल के 10+2 ढांचे का आवश्यक अंग बना दिया। 6 राज्यों तथा 3 संघ- प्रशासित प्रदेशों ने उच्चतर माध्यमिक शिक्षा के व्यावसायीकरण को, 1976 और 1979 के दौरान तथा 5 राज्यों एवं 2 संघीय क्षेत्रों ने 1983 और 1985 के बीच लागू किया था। 1985-86 में उच्चतर माध्यमिक स्तर पर, व्यावसायिक पाठ्यक्रमों को सुलभ कराने वाली संस्थाओं की संख्या 1900 थी और ये 10 राज्यों और 5 संघीय क्षेत्रों में फैली हुई थीं।

1985-86 में व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में कुल नामांकन 1,35,000 (कक्षा ग्यारह में 72,000 तथा बारह में 63,000) था। 1987-88 में, कार्यक्रम के प्रथम वर्ष में कुल नामांकन 1,20,000 है जो देश में उच्चतर माध्यमिक स्तर पर कुल दाखिले का 5 प्रतिशत है। +2 स्तर पर शिक्षा के व्यावसायीकरण को बढ़ावा देने के लिये, इन पाठ्यक्रमों के छात्रों के लिए विशिष्ट कुशलताओं में प्रशिक्षण, योजनाबद्ध शिक्षुता तथा लाभप्रद रोज़गार के सुलभीकरण जैसी सुविधाओं को जुटाने के लिए कदम उठाये गये हैं जो उन्हीं प्रयासों का हिस्सा हैं जो इस कार्यक्रम की उपयोगिता को बढ़ाने तथा इसे अधिक स्वीकार्य एवं सफल बनाने के लिये किये जा रहे हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में परिकल्पना की गई है कि व्यावसायिक शिक्षा को सुव्यवस्थित, सुनियोजित तथा पूर्ण उत्साह के साथ क्रियान्वित किया जाएगा, जिसमें व्यक्तिगत रोज़गार क्षमता बढ़ेगी, कुशल मानव-संसाधनों की उपलब्धि तथा मांग में अन्तर कम होगा तथा उन छात्रों को एक वैकल्पिक पाठ्यक्रम के चयन की सुविधा प्राप्त होगी, जो बिना रुचि एवं उद्देश्य के, उच्चतर शिक्षा प्राप्त करने लगते हैं। व्यावसायिक शिक्षा में उद्यम कार्य तथा अपना रोजगार चलाने के लिए आवश्यक अभिरुचियों, ज्ञान तथा कुशलताओं को विकसित करने पर भी बल दिया गया है। यह प्रस्ताव भी किया गया है कि उच्चतर माध्यमिक शिक्षा के छात्रों में से 1990 तक 25 प्रतिशत तथा 1995 तक 50 प्रतिशत छात्रों के लिये व्यावसायिक पाठ्यक्रमों की व्यवस्था कर दी जाये। इस बात की व्यवस्था भी की गई है कि व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के स्नातकों को व्यावसायिक विकास तथा पेशे में सुधार के अवसर जुटाये जाएं और उनके लिए ऐसे सेतु कोर्सों को उपलब्ध कराया जाये जिनके माध्यम से वे सामान्य तकनीकी तथा व्यावसायिक कोर्सों में पार्श्वक प्रवेश पा सकें।

शैक्षिक टैक्नालोजी का उपयोग

पिछले कुछ वर्षों में एक उल्लेखनीय बात यह हुई है कि स्कूल शिक्षा, शिक्षण-प्रशिक्षण, शिक्षा के व्यापक सुलभीकरण तथा देश के भिन्न क्षेत्रों तथा लोगों के भिन्न वर्गों में शैक्षिक असन्तुलन को कम करने के लिये, शैक्षिक टैक्नालोजी के साधनों का प्रयोग किया जाने लगा है।

शैक्षिक टैक्नालोजी की प्रगति के फलस्वरूप, शुरू में, देश के कई राज्यों में दृश्य-श्रव्य इकाइयां तथा फिल्म लाइब्रेरियां स्थापित की गईं। उस समय दृश्य-श्रव्य इकाइयों का मुख्य कार्य चार्टों, नक्शों, माडलों तथा अन्य शैक्षिक साधनों का उत्पादन एवं उपार्जन तथा तत्सम्बन्धी प्रशिक्षण देना था। फिल्म लाइब्रेरियां, स्कूलों में शैक्षिक फिल्मों तथा फिल्म-पट्टियों के प्रचार में लगी हुई थीं। शैक्षिक टैक्नालोजी ने, अधिगम विज्ञान तथा शिक्षण-प्रबन्ध के रूप में, छठे दशक के आरंभिक वर्षों में देश में पूर्व-योजित अध्ययन पद्धति के लागू होने के साथ, रचनात्मक दिशा में प्रगति की रा० शै० अनु० प० परिषद् ने पूर्व-योजित शिक्षण- सामग्री का प्रयोग करने में पहल की जिसकी

सहायता से प्रत्येक छात्र, अपनी अधिगम-क्षमता के अनुसार, अध्ययन द्वारा पूर्व-निश्चित शैक्षिक उद्देश्यों को प्राप्त कर सकता है। 1966 में स्थापित कार्यक्रमित अधिगम एवं शैक्षिक नवाचार के भारतीय संघ (Indian Association of Programmed Learning & Educational Innovations) ने, पूर्वयोजित शिक्षण सामग्री से सम्बन्धित शैक्षिक टैक्नालोजी का शिक्षा- शास्त्रियों में प्रचार करने में पथ-प्रदर्शक का कार्य किया।

शैक्षिक टैक्नालोजी में गुणात्मक सुधार तथा परिमाणात्मक विस्तार के उद्देश्य से, तत्कालीन शिक्षा तथा समाज कल्याण मंत्रालय ने पाँचवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान, एक कार्यक्रम को शुरू किया। यह कार्यक्रम, दूरदर्शन सुविधाओं के विस्तार के संदर्भ में तैयार किया गया था और इसका उद्देश्य, शिक्षा की गुणात्मकता को सुधारने के लिये, दूरदर्शन तथा रेडियो जैसे शिक्षण माध्यमों के प्रयोग को प्रोत्साहित करना था। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 1975 में रा० शै० अनु० प्र० परिषद् में, राष्ट्रीय स्तर पर शैक्षिक प्रौद्योगिकी केन्द्र तथा उसके चार क्षेत्रीय शिक्षण कालेजों में शैक्षिक प्रौद्योगिकी एककों की स्थापना की गई। बाद में शैक्षिक प्रौद्योगिकी केन्द्र तथा परिषद् के शिक्षण साधनों के विभाग का विलय करके, शैक्षिक प्रौद्योगिकी संस्थान (शै० प्रौ० सं०) बना दिया गया। उन्हीं दिनों देश भर में शैक्षिक प्रौद्योगिकी सैल भी

स्थापित किये गए। कुछ राज्यों में शैक्षिक प्रौद्योगिकी सैलों में अतिरिक्त सुविधाओं तथा रेडियो एवं दूरदर्शन के शैक्षिक कार्यक्रमों के विकास के लिए अवस्थापना की व्यवस्था कर, उन्हें राज्य शैक्षिक प्रौद्योगिकी संस्थानों में परिवर्तित कर दिया गया। आशा है कि अन्य सैल भी इसी नीति का अनुकरण करेंगे।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में प्रारंभिक शिक्षा के स्तर को सुधारने तथा देश के दूरवर्ती क्षेत्रों में और समाज के पिछड़े हुए वर्गों के लिए, शिक्षा के व्यापक सुलभीकरण में, शैक्षिक टैक्नालोजी की महत्वपूर्ण भूमिका की परिकल्पना की गई है। उपग्रहों की उपलब्धि तथा देश में दूरदर्शन तथा रेडियो केन्द्रजाल के प्रयोग के लिए, उपग्रह टैक्नालोजी के विस्तार से सम्बद्ध जो योजनायें बनाई गई हैं, उन्होंने शिंक्षा में जन संचार माध्यमों के व्यापक प्रयोग के लिये नए मार्गों को प्रशस्त कर दिया है।

आल इंडिया रेडियो जिसे अब आकाशवाणी का नाम दिया गया है, ने स्कूलों के लिए कार्यक्रमों का प्रसारण 1932 में आरम्भ कर दिया था। अब देश में 44 केन्द्र हैं जो नियमित रूप से स्कूलों के लिये कार्यक्रम तैयार करते हैं जिन्हें इन केन्द्रों के अतिरिक्त 30 सहायक केन्द्रों से भी प्रसारित किया जाता है ताकि दूरवर्ती क्षेत्रों में अध्यापक तथा छात्र इन से लाभान्वित हो सकें। कुछ केन्द्र, विश्वविद्यालयों द्वारा संचालित पत्राचार पाठ्यक्रमों को परिपुष्ट करने के लिये कार्यक्रमों का प्रसारण करते हैं। स्कूलों के लिये प्रतिवर्ष सात हजार से अधिक कार्यक्रम प्रसारित किये जाते हैं। अधिकांश कार्यक्रमों को आकाशवाणी के केन्द्र स्वयं निर्मित करते हैं। कुछ शिक्षा संस्थाएँ, विशिष्ट श्रोताओं के लिए, सुनिश्चित शैक्षिक उद्देश्यों को ध्यान में रखकर, एक मुश्त (पैकेज)श्रव्य कार्यक्रम तैयार करने लगी हैं। इस संदर्भ में माध्यमिक तथा उच्च माध्यमिक स्तरों पर अंग्रेजी की शिक्षा देने के लिये केन्द्रीय अंग्रेजी तथा विदेशी भाषा संस्थान, हैदराबाद, ने तथा प्राथमिक स्तर पर हिन्दी को प्रथम भाषा के रूप में पढ़ाने के लिए, केन्द्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी संस्थान ने पाठों को विकसित किया है। राजस्थान में अजमेर तथा जयपुर जिलों में किये गये सफल प्रयोगों के पश्चात, के० शै० प्रौ० सं० द्वारा विकसित कार्यक्रमों को होशंगाबाद जिले के 450 प्राथमिक स्कूलों में इस्तेमाल किया जायेगा जिन्हें 'टू-इन-वन' सैट दिये गए हैं।

रेडियो के विपरीत, दूरदर्शन को देश में, मुख्यतया, शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति के उद्देश्य से, शुरू किया गया था। प्रथम प्रायोगिक दूरदर्शन सेवा का उद्घाटन 1959 में दिल्ली में किया गया, आरम्भ में सामाजिक शिक्षा के कार्यक्रमों की श्रृंखला प्रदर्शित की गई और 1961 में, माध्यमिक स्कूलों की पाठ्यचर्या पर आधारित कार्यक्रमों का प्रसारण शुरू हुआ। दिल्ली में लगभग 600 स्कूलों मे दूरदर्शन सैटों की व्यवस्था की गई। तत्पश्चात् तीन अन्य केन्द्रों, बम्बई, मद्रास तथा श्रीनगर में स्कूल स्तर के पाठ्यक्रमों पर आधारित कार्यक्रमों का निर्माण एवं प्रसारण होने लगा।

1975-76 में एक वर्ष तक चलने वाले "उपग्रह शैक्षणिक दूरदर्शन प्रयोग" (जिस में अमरीकन उपग्रह का इस्तेमाल किया गया था), के साथ, दूरवर्ती ग्राम्य क्षेत्रों में रहने वाली जनता के लिए व्यापक रूप से संचार माध्यमों पर आधारित शिक्षा-पद्धति का चलन शुरू हुआ। उपग्रह के कार्यक्रमों से 6 राज्यों के बीस जिलों में स्थित 2330 ग्रामों में बसी हुई 35 लाख ग्रामीण जनसंख्या लाभान्वित हुई। प्रात:कालीन प्रसारण, प्रारम्भिक शिक्षा के कार्यक्रमों की समृद्धि के लिए नियत किये गये थे।

उपग्रह प्रयोग की सफलता से उत्साहित होकर 1979 में एक ऐसी योजना को विकसित करने के लिए प्रारम्भिक कार्रवाई की गई जिसमें शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए, दूरदर्शन की उन सभी सुविधाओं का लाभ उठाना था जिनकी 1982 में भारत के अपने उपग्रह के अन्तरिक्ष में भेजे जाने से प्राप्त होने की सम्भावना थी। इस समय प्रारम्भिक शिक्षा स्तर के बच्चों तथा अध्यापकों के लिये, शैक्षिक दूरदर्शन कार्यक्रम इन्सैट I बी के माध्यम से, प्रतिदिन लगभग 4 घण्टों के लिए प्रसारित किया जाता है जिन्हें '6 राज्यों में' 5 प्रादेशिक भाषाओं में सुना जा सकता है। ये कार्यक्रम केन्द्रीय तथा राज्य शैक्षिक प्रौद्योगिकी केन्द्रों द्वारा तैयार किये जाते हैं। इन राज्यों में, विशेषकर ग्राम्य प्रारम्भिक स्कूलों के लिए, 4500 से अधिक सामूहिक सैटों की व्यवस्था की गई है। 1984 से लेकर शैक्षिक दूरदर्शन कार्यक्रम, इन्सैट की सहायता से 6 राज्यों में तथा उनका हिन्दी रूपान्तरण, 5 अतिरिक्त राज्यों और एक संघीय क्षेत्र में, सभी दूरदर्शन प्रेषकों द्वारा प्रसारित किया जाता है। अभिग्राही सैटों की कमी को दूर करने के लिये, सरकार ने प्राथमिक स्कूलों के लिये,

90,000 अतिरिक्त टी.वी. सैट तथा वर्तमान योजना के शेष वर्षों में सभी प्राथमिक स्कूलों में 'टू-इन-वन' सैट उपलब्ध कराने के लिये आवश्यक कदम उठाये हैं।

1986 से लेकर, स्कूल अध्यापकों के समूह-अभिस्थापन के राष्ट्रीय कार्यक्रम के अन्तर्गत, शैक्षिक दूरदर्शन कार्यक्रम प्रसारित किये जा रहे हैं। प्रत्येक वर्ष लगभग 5 लाख अध्यापकों तथा शिक्षा से सम्बद्ध अन्य कर्मचारियों को इस योजना से लाभ हुआ है।

इन्सैट I C तथा नवें दशक के प्रारम्भिक वर्षों में प्रस्तावित दूसरी पीढ़ी के उपग्रहों (इन्सैट II) के अन्तरिक्ष में स्थापित किये जाने के फलस्वरूप, दूरदर्शन की संवर्धित क्षमताओं की सहायता से, इस माध्यम का, राष्ट्र के उन वर्गों की शिक्षा के लिए व्यापक प्रयोग किया जाएगा जो अभी तक इसकी पहुंच से वंचित रहे हैं। हाल ही के वर्षों में, जो महत्त्वपूर्ण घटना घटी है, वह है स्कूलों में संगणक शिक्षा का संचालन। अब तक 640 माध्यमिक स्कूलों में, संगणक साक्षरता तथा अध्ययन की व्यवस्था की जा चुकी है। यह कार्यक्रम 53 संसाधन केन्द्रों की सहायता से कार्यान्वित किया जा रहा है। क्लास (कम्प्यूटर लिटरेसी एण्ड स्टडीज इन स्कूल्स) नामक परियोजना के अन्तर्गत, छात्रों को संगणकों तथा उनके प्रयोग के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी दी जाती है ताकि संगणक उनके लिए रहस्यमय यन्त्र न बना रहे तथा उन्हें इसके प्रयोगों की विविधता एवं अध्ययन-अध्यापन के साधन के रूप में इसकी क्षमता से अवगत कराया जा सके।

गुणात्मक विकास की समस्याएं

स्वतंत्रता-प्राप्ति के प्रथम दो दशकों में शैक्षिक सुविधाओं के विस्तार को उच्च प्राथमिकता दी गई थी। इससे स्कूल-शिक्षा के गुणात्मक सुधार के कार्यक्रम को सफल बनाने में कुछ बाधा पड़ी। आर्थिक विषम स्थिति के कारण, गुणात्मक सुधार के लिए, पर्याप्त वित्त की व्यवस्था न की जा सकी। कुछ अच्छे स्कूलों की संख्या में बढ़ोतरी अवश्य हुई तथा कुछ स्कूलों के स्तर को सुधारा भी गया, किन्तु शिक्षा के लिए बढ़ती हुई मांग को पूरा करने के लिए, कई घटिया दर्जे के स्कूल भी स्थापित किये गये। आजादी के शीघ्र बाद ही स्कूल स्तर पर शिक्षा की गुणवत्ता को सुधारने के लिए, सुव्यवस्थित कार्यक्रमों के विकास की

आवश्यकता को महसूस किया गया था। प्राथमिक शिक्षा को सुधारने के लिए जरूरी था कि पाठ्यचर्या के विकास तथा नवीकरण पर बल दिया जाये। अतः सभी विषयों में पाठ्यक्रमों को उन्नत करने एवं विषयों में अधिक विविधता लाने तथा उन्हें आधुनिक जानकारी से समृद्ध बनाने के प्रयास किये गए। उसके साथ-साथ पाठ्य पुस्तकों तथा अध्ययन-अध्यापन सामग्री को भी सभी पहलुओं से सुधारा गया ताकि उन्हें उन्नत पाठ्य-वस्तु एवं उच्च स्तरीय शिक्षण के अनुरूप बनाया जा सके।

स्कूल शिक्षा को गुणात्मक बनाने के लिये, आजादी के तुरन्त बाद कई केन्द्रीय संस्थान स्थापित किये गए। उनमें केन्द्रीय शिक्षा संस्थान (1947), केन्द्रीय पाठ्य पुस्तक अनुसंधान ब्यूरो (1954), केन्द्रीय शैक्षिक और मार्गदर्शन ब्यूरो (1954), अखिल भारतीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (1955), माध्यमिक शिक्षा विस्तार कार्यक्रम निदेशालय (1955-59), राष्ट्रीय बुनियादी शिक्षा संस्थान (1956), राष्ट्रीय मूल शिक्षा केन्द्र (1956) तथा राष्ट्रीय श्रव्य-दृश्य शिक्षा संस्थान प्रमुख माने जाते हैं।

सितम्बर, 1961 में एक स्वायत्त संगठन के रूप में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की स्थापना की गई तथा इन सभी केन्द्रीय संस्थाओं का उसमें विलय कर दिया गया। इस परिषद् को, स्कूल शिक्षा के गुणात्मक सुधार के लिए निर्मित नीतियों के क्रियान्वयन तथा उसी सम्बन्ध में कार्यक्रमों एवं नवीन प्रक्रियाओं को विकसित करने में केन्द्रीय और राज्य सरकारों की सहायता एवं मार्गदर्शन के लिये स्थापित किया था। तब से स्कूल शिक्षा के गुणात्मक विकास के लिये किये गये प्रयासों में इस परिषद् की देन महत्त्वपूर्ण रही है। परिषद् के मुख्य उत्तरदायित्वों में अनुसंधान, विकास, प्रशिक्षण तथा विस्तार कार्य सम्मिलित हैं। स्कूल शिक्षा के लिए, पाठ्यक्रमों का विकास तथा पाठ्यपुस्तकों की रचना, इसकी प्रमुख क्रियाओं में से हैं।

परिषद् ने शिक्षकों के लिए दर्शिकाएँ तथा छात्रों के लिए पाठ्य पुस्तकें एवं अनुपूरक पाठ्य सामग्री तैयार की हैं। उसने अनुसंधान विनिबन्ध तथा कई पत्रिकाएं भी प्रकाशित की हैं। परिषद्, स्कूली बच्चों के लिए शिक्षण साधनों, विज्ञान किटों, प्रयोगशालाओं के लिये उपकरणों, शैक्षणिक फिल्मों तथा दूरदर्शन एवं रेडियो के लिए शैक्षिक कार्यक्रमों को तैयार करने में संलग्न रही है। प्रयोगवाद के साथ-साथ
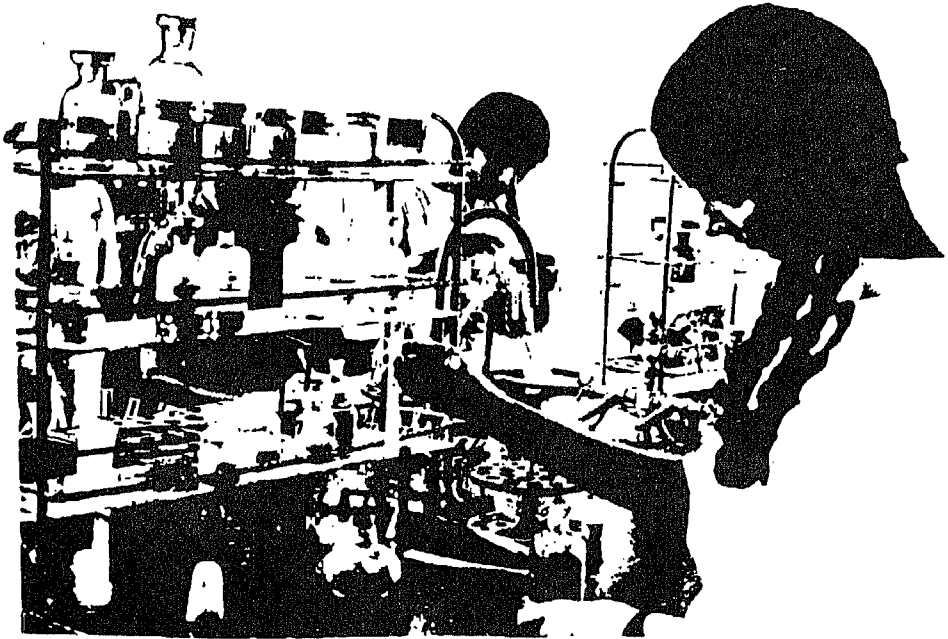
इसने पाठ्यक्रम विकास, शिक्षण प्रक्रिया एवं परीक्षा पद्धति से सम्बद्ध शिक्षण-विधियों तथा नवीकरण की ओर विशेष ध्यान दिया है। देश में स्कूल शिक्षा तथा शिक्षक-प्रशिक्षण में गुणात्मक सुधार, परिषद् के ध्यान के मुख्य केन्द्र रहे हैं।

स्कूलों में पाठ्यक्रमों का नवीकरण

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1968) के लागू होने के साथ, स्कूल शिक्षा में गुणवत्ता के सुधार से सम्बद्ध कार्यक्रम का क्रियान्विति का नया युग प्रारम्भ हुआ। शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने के लिये जो प्रयास किये गए, उनमें अधिक बल स्कूल पाठ्यक्रम के विकास तथा नवीकरण पर दिया गया। 1973 में केन्द्रीय शिक्षा तथा सामाजिक कल्याण मंत्रालय ने, स्कूल पाठ्यचर्या का ढांचा तैयार करने के लिए, विशेषज्ञों की एक समिति की नियुक्ति की। समिति ने तत्कालीन शिक्षा विधियों का गहन अध्ययन किया तथा देश में प्रारम्भिक एवं माध्यमिक शिक्षा के लिए पाठ्यक्रम के विकास के लिये एक ढांचे का प्रस्ताव किया। इसी ढांचे को कार्यरूप देने के लिए रा०शै०अनु०प्र०प० ने 1975 में दस वर्षीय स्कूल के लिए पाठ्य विवरण की एक रूपरेखा प्रस्तुत की।

इस रूपरेखा में, स्वीकार्य सिद्धान्तों तथा मूल्यों की परिधि के अन्तर्गत, पाठ्यक्रम के लचीलेपन पर बल दिया गया था ताकि उसे, यथा समय, वैज्ञानिक एवं तकनीकी शिक्षा की शीघ्रता से विस्तृत होती सीमाओं तथा देश में सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों के अनुरूप बनाया जा सके। बच्चों को आधुनिक ज्ञान से अवगत कराने, उनकी जिज्ञासा को प्रोत्साहित करने, अन्वेषण की वैज्ञानिक विधि को सिखाने तथा उनके मन में राष्ट्रीय दृष्टिकोण एवं वैज्ञानिक मन:स्थिति को बिठाने के उद्देश्य से, इस रूपरेखा में, विज्ञान तथा गणित को दसवीं कक्षा तक स्कूल शिक्षा का अभिन्न अंग बनाने की परिकल्पना की गई है। स्कूल शिक्षा के सभी स्तरों पर शिक्षा-प्राप्ति के साधन के रूप में, कार्य-अनुभव पर भी बल दिया गया है। ऐसे पाठ्यक्रम को विकसित करने की आवश्यकता पर भी जोर दिया गया है जो सामाजिक चेतना को उभारने, लोकतांत्रिक मूल्यों को विकसित करने तथा सामाजिक न्याय की भावना एवं राष्ट्रीय समन्वय को प्रोत्साहित करने में सहायता दे सके।

"दस वर्षीय स्कूल के लिए पाठ्यक्रम—एक रूपरेखा" के आधार पर विकसित पाठ्यचर्या तथा पाठ्य पुस्तकों समेत पठन-पाठन की योजनाओं तथा उद्देश्यों के मूल्यांकन तथा पुनः परीक्षण के लिए, जून 1977 में, एक पुनरीक्षण समिति नियुक्त की गई थी।

स्कूल शिक्षा के उद्देश्यों तथा विषय-वस्तु का पुनरावलोकन कर, समिति ने, स्कूल शिक्षा के भिन्न स्तरों पर पढ़ाए गए विषय-क्षेत्रों की संरचना, पाठ्य-विवरण के ढांचे तथा उनके समय-निर्धारण के सम्बन्ध में कुछ सिफारिशें कीं। समिति ने सुझाव दिया कि शैक्षिक उपलब्धियों की तुलनीयता तथा अतिरिक्त कुशलताओं एवं ज्ञान की प्राप्ति के उद्देश्य से पाठ्यक्रम में मूल विषय-वस्तु के 'कोर' की व्यवस्था करते समय, इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप हो। समिति ने यह सिफारिश भी की कि स्कूल शिक्षा के सभी स्तरों पर समाजोपयोगी उत्पादक कार्य को प्रमुख स्थान दिया जाये तथा पाठ्य विषयों का यथासम्भव, उससे सम्बन्ध जोड़ा जाये। समिति का मत था कि किसी भी विषय के लिये निर्धारित पाठ्य सामग्री सामान्यतया सबके लिए एक समान होनी चाहिये किन्तु उसमें इतना लचीलापन अवश्य हो कि स्कूल शिक्षा के बोर्ड, उसका ब्योरे का विवरण अपनी आवश्यकताओं के अनुसार तैयार कर सकें। समिति ने निर्धारित विषयों की सूची में से एक ऐच्छिक विषय के अध्ययन की सिफारिश भी की ताकि छात्र अपनी विशिष्ट अभिरूचियों तथा प्रतिभाओं को विकसित कर सकें। समिति ने माध्यमिक स्तर पर विज्ञान तथा गणित में भिन्न स्तरों के शिक्षण अनुक्रमों का प्रस्ताव किया किन्तु बाद में इसे रद्द कर दिया गया।

देश में राज्यों तथा संघीय क्षेत्रों में स्कूलों के लिये जो पाठ्यक्रम विकसित किये गये थे, वे "दस वर्षीय स्कूल के लिए पाठ्यक्रम—एक रूपरेखा" तथा दस वर्षीय स्कूलों के पाठ्यक्रमों के पुनरीक्षण के लिए स्थापित समिति की रिपोर्ट पर आधारित थे। किन्तु उनके क्रियान्वयन की मात्रा में सन्तुलन स्थापित नहीं किया जा सका। उसका एक कारण यह था कि पाठ्यक्रम में सुझाये गए परिवर्तनों को अध्यापन एवं अध्ययन की प्रक्रियाओं, शिक्षक प्रशिक्षण तथा परीक्षाओं में सुधार से सम्बद्ध करने के लिए कोई व्यापक योजना नहीं थी। स्कूलों में पाठ्यक्रम को प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए आवश्यक भौतिक एवं मानव संसाधन

सब स्थानों पर एक समान उपलब्ध नहीं थे। कक्षाओं में पाठ्यचर्या के वास्तविक अनुकरण तथा पाठ्यक्रम के परिकल्पित उद्देश्यों में विषमता के परिणामस्वरूप, छात्रों की उपलब्धियों के स्तर तथा देश के भिन्न भागों में स्थित स्कूलों की शिक्षा के स्तर में व्यापक अन्तर आ गया।

1983 में रा०शै०अ० और प्रशिक्षण परिषद् ने एक कार्यकारी ग्रुप का गठन किया जिसका कार्य भिन्न राज्यों तथा संघीय क्षेत्रों में प्रवर्तमान पाठ्यक्रमों की शीघ्रता से जांच करना तथा शैक्षणिक भार की दृष्टि से उनका मूल्यांकन करना था। 1984 में प्रकाशित इस कार्यकारी ग्रुप की रिपोर्ट, "**स्कूल स्तर पर पाठ्यक्रम भार—एक आशु मूल्यांकन**", में समस्या के स्वरूप की व्याख्या की गई तथा पाठ्यक्रम- भार के अवबोध के मूल कारणों का पता लगाया गया। रिपोर्ट ने स्पष्ट किया कि पाठ्यक्रम के भार की समस्या के लिए उसका विकास इतना उत्तरदायी नहीं था जितना उसका प्रबन्ध तथा उसके सम्बन्ध में प्रत्यक्ष ज्ञान जिनकी जटिलता साधनों की कमी के कारण और बढ़ गई थी। आवश्यक भौतिक सुविधाओं तथा शैक्षणिक निवेशों की कमी, शिक्षा शास्त्रीय नवीन प्रक्रियाएं निम्न-कोटि की अध्यापन-सामग्री, अध्यापकों की तैयारी और अभिस्थापन में कमी, सार्वजनिक परीक्षाओं का प्रभुत्व—ये सभी तत्व विद्यार्थी को अध्ययन के आनन्द से वंचित रखने के लिये उत्तरदायी समझे गए थे।

पाठ्यक्रम के मूल्यांकन सम्बन्धी रिपोर्ट पर अनुवर्ती कार्रवाई के सन्दर्भ में रा.शै.अनु.प्र. परिषद् ने एक संचालन ग्रुप का गठन किया जिसे उभरती समस्याओं तथा अवश्यकरणीय विषयों को ध्यान में रख कर, प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा के लिए एक राष्ट्रीय पाठ्यक्रम के ढांचे को विकसित करने का कार्य सौंपा गया।

इस ग्रुप द्वारा निर्दिष्ट पाठ्यक्रम सम्बन्धी समस्याओं एवं विषयों पर, 1985 में सम्पादित एक राष्ट्रीय तथा चार प्रादेशिक सेमिनारों में विचार-विनिमय किया गया। इन सेमिनारों में दिये गए सुझावों और सिफारिशों के आधार पर, रा०शै०अनु०प्र० परिषद् ने जनवरी, 1986 में, प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा के लिए एक राष्ट्रीय पाठ्यक्रम ढांचा प्रस्तुत किया, जिसे बाद में, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के महत्त्वपूर्ण सुझावों और प्राथमिकताओं के संदर्भ में संशोधित कर, अप्रैल, 1988 में प्रकाशित कर दिया गया। परिषद् ने, राष्ट्रीय पाठ्यक्रम के ढांचे में

संकेतित पाठ्यक्रम के भिन्न क्षेत्रों के लिए पाठ्यचर्या के लिए मार्गदर्शी रूपरेखाएं तथा पाठ्य-विवरण तैयार किये हैं।

राष्ट्रीय पाठ्यक्रम के ढांचे के आधार पर विकसित पाठ्य चर्या के अनुसार, निर्मित पाठ्य-पुस्तकों सहित, संशोधित शैक्षणिक पैकेज भी विकसित किये गए हैं और उन्हें केन्द्रीय विद्यालयों तथा माध्यमिक शिक्षा के केन्द्रीय बोर्ड से सम्बद्ध अन्य स्कूलों में क्रमिक कार्यक्रम के अनुसार क्रियान्वित किया जा रहा है। राज्यों तथा संघीय क्षेत्रों ने रा.शै.अनु.प्र. परिषद् द्वारा विकसित पाठ्यक्रम तथा शैक्षणिक पैकेजों के आधार पर अपनी पाठ्यचर्याओं और शैक्षणिक पैकेजों को संशोधित करके, उन्हें अपने स्कूलों में लागू करना शुरू कर दिया है।

विज्ञान शिक्षा

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद, स्कूलों में विज्ञान के शिक्षण को सुधारने के लिए महत्त्वपूर्ण प्रयास किए गए हैं। माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53) ने स्कूल-स्तर पर विज्ञान तथा गणित के अध्यापन को सुदृढ़ बनाने की सिफारिश की थी। इसने सुझाव दिया था कि माध्यमिक स्तर पर विज्ञान के कुछ सामान्य पक्षों की शिक्षा दी जाये तथा उच्चतर माध्यमिक स्तर पर भौतिकी, रसायन, जीवविज्ञान तथा गणित को वैकल्पिक विषयों के रूप में पढ़ाया जाये। इसी सुझाव के क्रियान्वयन के फ़लस्वरूप, विज्ञान को वैकल्पिक विषय के रूप में अधिक से अधिक स्कूलों में तथा सामान्य विज्ञान को सभी माध्यमिक स्कूलों में पढ़ाने की सुविधाओं को उपलब्ध कराने के प्रयास किये गए थे।

शिक्षा आयोग (1964-66) की रिपोर्ट मिलने पर, विज्ञान की शिक्षा को सुधारने के लिए क्रमबद्ध प्रयास किये गए। स्कूल शिक्षा के पुनर्गठन की चर्चा करते हुए, आयोग ने स्कूलों में विज्ञान तथा गणित के शिक्षण के स्तर को ऊंचा उठाने की आवश्यकता पर बल दिया था। स्कूलों में विज्ञान के अध्ययन-अध्यापन को सुधारने के लिए कई प्रायोजनाएं क्रियान्वित की गईं। रा.शै.अनु.प्र. परिषद् द्वारा क्रियान्वित विज्ञान शिक्षा कार्यक्रम के अन्तर्गत, इस दिशा में एक महत्त्वपूर्ण प्रयास किया गया। प्राथमिक तथा माध्यमिक स्कूलों में विज्ञान के अध्यापन के पुनर्गठन एवं विस्तार के लिए 1969 में विज्ञान शिक्षा बोर्ड की स्थापना की गई। 1975 तक, देश में प्रायः सभी राज्यों और संघीय क्षेत्रों ने

स्कूलों में इस कार्यक्रम को लागू कर दिया था। विज्ञान के पाठ्य विवरण का नवीकरण, शिक्षण साधनों का विकास एवं प्रयोग, अध्यापकों का सेवाकालीन प्रशिक्षण तथा प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर विज्ञान के अध्यापन के लिए पर्यावरण तथा स्थानीय संसाधनों का प्रयोग, इस कार्यक्रम में सम्मिलित थे। इसके साथ ही, उच्च तथा उच्चतर माध्यमिक स्तरों पर विज्ञान तथा गणित के पाठ्यक्रमों को सुधारने के लिए प्रायोजनाओं को शुरू किया गया। इन प्रायोजनाओं में आधुनिकीकृत पाठ्यक्रमों, क्रिया तथा प्रयोग पर आधारित पाठ्य-पुस्तकों, अध्यापकों के लिये गाइडों, प्रयोगशालाओं के लिये नियम पुस्तिकाओं, विज्ञान किटों, फिल्म एवं फिल्म-पट्टियों तथा अन्य शिक्षण साधनों से सम्बद्ध व्यापक शिक्षण पैकेजों के कार्यक्रम सम्मिलित थे। रा.शै.अनु.प्र. परिषद् ने, विज्ञान के अध्यापकों को, विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में हुई प्रगति तथा विज्ञान के अध्यापन में नवीनतम तकनीकों से अवगत कराने के लिए, ग्रीष्म-कालीन प्रशिक्षण कार्यक्रमों को भी आयोजित किया। परिषद् ने राज्य शिक्षा संस्थानों, राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषदों तथा राज्य विज्ञान शिक्षा संस्थानों जैसे संगठनों के प्रमुख कुशल व्यक्तियों के लिये, राष्ट्रीय/प्रादेशिक/राज्य स्तरों पर, कई प्रशिक्षण कार्यक्रमों का संचालन किया। परिषद् ने, नवीन विचारों एवं प्रगतियों को प्रसारित करने के लिए तथा विज्ञान के शिक्षकों तथा प्रशिक्षकों को विचार-विनिमय के लिये एक मंच जुटाने के लिये, ''**स्कूल साइंस**'' नाम की पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया। विज्ञान को सर्वप्रिय बनाने के लिये, बच्चों के लिये 'राष्ट्रीय विज्ञान प्रदर्शनी' की योजना समारम्भ की गई। विज्ञान तथा गणित में प्रतिभाशाली छात्रों की खोज तथा पी.एच.डी. स्तर तक उनके अध्ययन काल में, प्रतिभा को परिपोषित करने के उद्देश्य से ''विज्ञान प्रतिभा खोज'' की एक योजना संचालित की गई।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में विज्ञान शिक्षा को सुदृढ़ बनाने की परिकल्पना की गई है ताकि बच्चों में, जिज्ञासा, सृजनात्मकता, वस्तुनिष्ठता, शंका-निवारण के लिये प्रश्न पूछने का साहस तथा सौन्दर्य-संवेदना जैसी सुनिश्चित क्षमताओं एवं मूल्यों को विकसित किया जा सके। स्कूलों में विज्ञान शिक्षा को सुधारने के प्रयासों के अन्तर्गत, एक केन्द्रीय योजना शुरू की गई है। इस योजना में, सभी उच्चतर माध्यमिक स्कूलों

को विज्ञान किट्स देने; माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक स्कूलों में विज्ञान प्रयोगशालाओं को दृढ़ बनाने तथा उनके स्तर को सुधारने; माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक स्कूलों में पुस्तकालयों के स्तर को ऊँचा उठाने; स्कूल शिक्षा के सभी स्तरों पर अध्यापकों को सेवाकालीन प्रशिक्षण देने; शिक्षकों को प्रशिक्षण देने तथा शिक्षण सामग्री का विकास करने के लिए जिला संसाधन केन्द्रों को स्थापित करने; तथा विज्ञान शिक्षा के क्षेत्र में नवाचारी प्रायोजनाओं को चलाने तथा विज्ञान के विकास के लिए अन्य क्रियाकलापों को शुरू करने के लिए स्वायत्त संगठनों को वित्तीय सहायता देने की व्यवस्था है।

परीक्षाओं में सुधार

स्कूल स्तर पर शिक्षा की गुणवत्ता को सुधारने के लिये जो प्रयास किये गये, परीक्षाओं में सुधार उन्हीं में से एक है। विद्यार्थियों के कार्य-निष्पादन का मूल्यांकन करने के लिये परीक्षा पद्धति तथा अन्य प्रक्रियाओं एवं तकनीकों में सुधार करने के लिये कई कदम उठाये गए। परीक्षा-सुधार के लिये जो कार्रवाई की गई, उसमें शैक्षिक मूल्यांकन, अनुसंधान तथा विकासात्मक कार्यक्रमों के लिये नवीन उपागम तथा एक नई नीति शामिल थे जिसका उद्देश्य सार्वजनिक परीक्षाओं, मूल्यांकन प्रक्रियाओं एवं तकनीकों के विकास में संलग्न अध्यापकों एवं अन्य प्रमुख व्यक्तियों के प्रशिक्षण में सुधार करना था। भिन्न विषय-क्षेत्रों में प्रश्न-बैंकों तथा यूनिट-टैस्टों के रूप में मूल्यांकन-सामग्री के नमूने तैयार करना, व्यापक सतत् मूल्यांकन के लिये योजनाएं बनाना तथा खुली पुस्तकों की सहायता से परीक्षाएं, मौखिक परीक्षाओं एवं परिणामों की घोषणा के लिये श्रेणीकरण जैसी वैकल्पिक मूल्यांकन प्रक्रियाओं की योजनाओं को विकसित करना, इसी कार्रवाई का हिस्सा थे। इन्हीं गतिविधियों के फलस्वरूप, कई माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक शिक्षा-बोर्डों ने प्रश्न-पत्रों के डिजाइन, मूल्यांकन की प्रक्रियाओं तथा परीक्षा-संचालन तकनीकों में महत्वपूर्ण सुधार किये हैं।

शिक्षक प्रशिक्षण

स्वतंन्त्रता-प्राप्ति के बाद अध्यापकों की संख्या में महत्वपूर्ण वृद्धि

हुई है। प्राथमिक स्कूलों के अध्यापकों की संख्या 1950-51 में 5.38 लाख से बढ़ कर 1985-86 में 15.22 लाख हो गई। माध्यमिक स्तर पर अध्यापकों की संख्या 1950-51 में ·86 लाख से बढ़कर 1985-86 में 9.79 लाख हो गई। इसी अवधि में उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं के अध्यापकों की संख्या 1.27 लाख से बढ़कर 11.99 लाख हो गई।

भारत के स्वाधीन होने के बाद से सेवा-पूर्व तथा सेवारत अध्यापकों की योग्यता में वृद्धि करने के उद्देश्य से कई कार्यक्रम शुरू किये गए जिनमें सेवारत अध्यापकों के लिये पत्राचार एवं सम्पर्क कोर्सों की व्यवस्था, तथा अप्रशिक्षित अध्यापकों की मान्यता-प्राप्त शिक्षा संस्थाओं में पूर्णकालिक, संस्थागत प्रशिक्षण के लिए प्रतिनियुक्ति प्रमुख हैं। इन कार्यक्रमों से, प्राथमिक तथा माध्यमिक स्कूलों में अप्रशिक्षित तथा कम प्रशिक्षित शिक्षकों की संख्या में कमी करने में काफी सहायता मिली।

गत वर्षों में प्रशिक्षित अध्यापकों की संख्या नियमित रूप से बढ़ती रही है। प्राथमिक स्कूलों में प्रशिक्षित अध्यापकों की प्रतिशतता 1950–51 में 58.8 से बढ़कर 1986-87 में 87.26 हो गई। माध्यमिक स्कूलों में यह प्रतिशतता 1950–51 में 53.3 से बढ़कर 1986-87 में 89.64 हो गई।

प्राथमिक तथा माध्यमिक स्कूलों के अध्यापकों के लिए सेवाकालीन प्रशिक्षण कोर्सों को संगठित करने में कई संगठन तथा एजेंसियां लगी हुई हैं। राष्ट्रीय स्तर पर, रा. शै. अनु. प्र. परि. ने सेवाकालीन अध्यापकों के प्रशिक्षण में लगे प्रमुख प्रशिक्षकों तथा विशिष्ट व्यक्तियों के लिए प्रशिक्षण कोर्स संगठित किये। प्रादेशिक स्तर पर, परिषद् द्वारा संचालित क्षेत्रीय शिक्षा कालेज भी, राज्यों/संघीय क्षेत्रों के प्रमुख तथा उपाय कुशल व्यक्तियों के लिए प्रशिक्षण कोर्सों का संचालन करते हैं। वे प्रादेशिक स्तर पर अथवा किसी राज्य की विशिष्ट मांग पर प्रशिक्षण कोर्स संगठित करते हैं। राज्य/संघीय क्षेत्र के स्तर पर, राज्य शैक्षणिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषदें/राज्य शिक्षा संस्थान, सेवारत अध्यापकों के लिए अल्प-कालिक प्रशिक्षण कोर्स आयोजित करते हैं।

सेवा-पूर्व तथा सेवारत अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए एक उपयुक्त तंत्र को विकसित करने के लिये प्रयास किये जा रहे हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में अध्यापक प्रशिक्षण को देश की परिवर्तित होती आवश्यकताओं के अनुरूप बनाने के लिये, उसे ओवरहाल करने
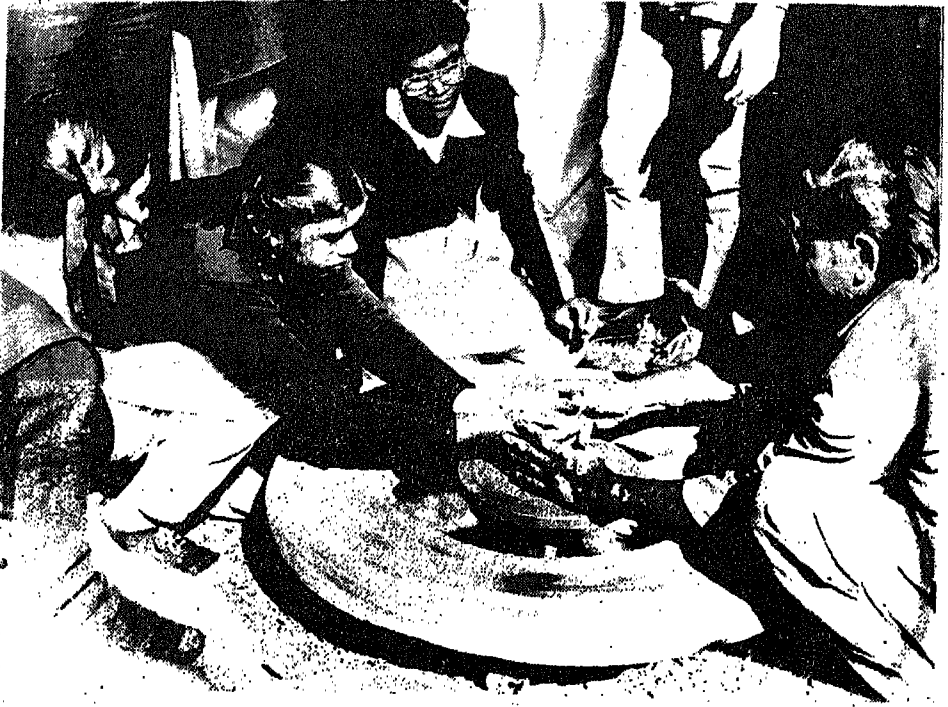
की परिकल्पना की गई है। अतः शिक्षकों की शिक्षा को पुनः संरचित तथा संगठित करने के कार्य की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। शिक्षक-शिक्षण को सुधारने के प्रयासों के अन्तर्गत, उसके पुनर्गठन तथा पुर्नसंरचना के लिए एक केन्द्रीय योजना शुरू की गई है। इस योजना में जिन कार्यकलापों की परिकल्पना की गई है, वे हैं– 1990 तक प्रतिवर्ष लगभग 5,00,000 अध्यापकों का अनुस्थापन ताकि नई नीति के क्रियान्वयन के लिए, उन्हें प्रेरणा एवं सक्षमता प्रदान की जा सकें; लगभग 400 जिला शिक्षा तथा प्रशिक्षण संस्थाओं की स्थापना; लगभग 250 माध्यमिक शिक्षक शिक्षा संस्थानों का गठन करना तथा उनमें से 50 को शिक्षा के उच्च अध्ययन संस्थानों के रूप में विकसित करना; राज्य शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषदों को सुदृढ़ बनाना; और विश्वविद्यालयों में शिक्षा विभागों की स्थापना तथा उन्हें सुदृढ़ बनाना।

व्यापक अनुस्थापन कार्यक्रम के अन्तर्गत, 1986-87 तथा 1987-88 में क्रमशः4.42 तथा 4.55 लाख स्कूल अध्यापकों को अनुस्थापित किया गया है। सातवीं योजना अवधि के शेष वर्षों में यह कार्यक्रम जारी रहेगा। प्रत्येक वर्ष लगभग 5 लाख अध्यापकों को अनुस्थापित करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

शैक्षिक विकास में वर्तमान प्राथमिकताएं

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में भावी वर्षों में स्कूल शिक्षा के क्षेत्र में अपेक्षित प्रमुख उपक्रमणों तथा प्राथमिकताओं का उल्लेख है। वे इस प्रकार हैं:

1. अनूसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए अल्पसंख्यकों तथा शारीरिक एवं मानसिक रूप से अक्षम व्यक्तियों की विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति द्वारा, विषमताओं का निराकरण तथा शैक्षिक अवसरों का समीकरण।
2. शिक्षा को, सामाजिक रूपान्तरण एवं राष्ट्रीय विकास के लिए प्रमुख माध्यम तथा सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक मूल्यों और भारतीय संविधान में प्रतिष्ठापित मूल्यों के पोषण के लिए

शक्तिशाली सा
प्रक्रिया का अन पन।

3. स्कूलों को सुधारने के लिये, एक दीर्घ-कालिक राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम जिसे प्रगति-मूलक स्कूलों की स्थापना से बल एवं प्रोत्साहन मिलेगा। ये स्कूल, शिक्षा के गुणात्मक सुधार के कार्यक्रम के लिए उत्प्रेरक की भूमिका निभाने की चेष्टा करेंगे।
4. व्यक्तिगत रोजगार-क्षमता को बढ़ाने, कुशल मानव-शक्ति की माँग तथा उपलब्धि में असन्तुलन को कम करने, तथा बिना विशेष रुचि अथवा प्रयोजन के उच्च-शिक्षा प्राप्त करने में संलग्न युवकों के लिए एक विकल्प जुटाने के लिए, शिक्षा का व्यावसायीकरण।
5. जन संचार के माध्यमों के प्रयोग द्वारा सर्व-साधारण के लिए शिक्षा का अधिक सुलभीकरण तथा खुली एवं सतत् शिक्षा पद्धति के लिए संस्थाओं की स्थापना।
6. शिक्षक शिक्षा को स्कूल पाठ्यक्रम की बदलती मांगों के अनुकूल बनाने के लिए, उसके पुनः कल्पन (ओवरहाल) के साथ-साथ ऐसी परिस्थितियों को पैदा करना जो अध्यापकों को रचनात्मक तथा सृजनात्मक दृष्टिकोण अपनाने के लिये प्रेरित एवं अनुप्राणित करें।
7. शिक्षा के आयोजन तथा प्रबन्ध की पद्धति का पुनः कल्पन, जिसके लिए शिक्षा का दीर्घकालीन आयोजन तथा प्रबन्ध के परिपेक्ष्य को विकसित करना और देश के विकास तथा जन-संसाधनों की आवश्यकताओं के साथ उसका समाकलन करना आवश्यक होगा; शैक्षिक संस्थाओं का विकेन्द्रीकरण तथा उनमें स्वायत्तता की भावना का उत्पादन; तथा शैक्षिक कार्यों के आयोजन एवं क्रियान्वयन में गैर-सरकारी एजेंसियों और स्वैच्छिक संगठनों सहित लोगों के सक्रिय योगदान की व्यवस्था।